वैदिकधर्म

मई १९६७

५० पैसे

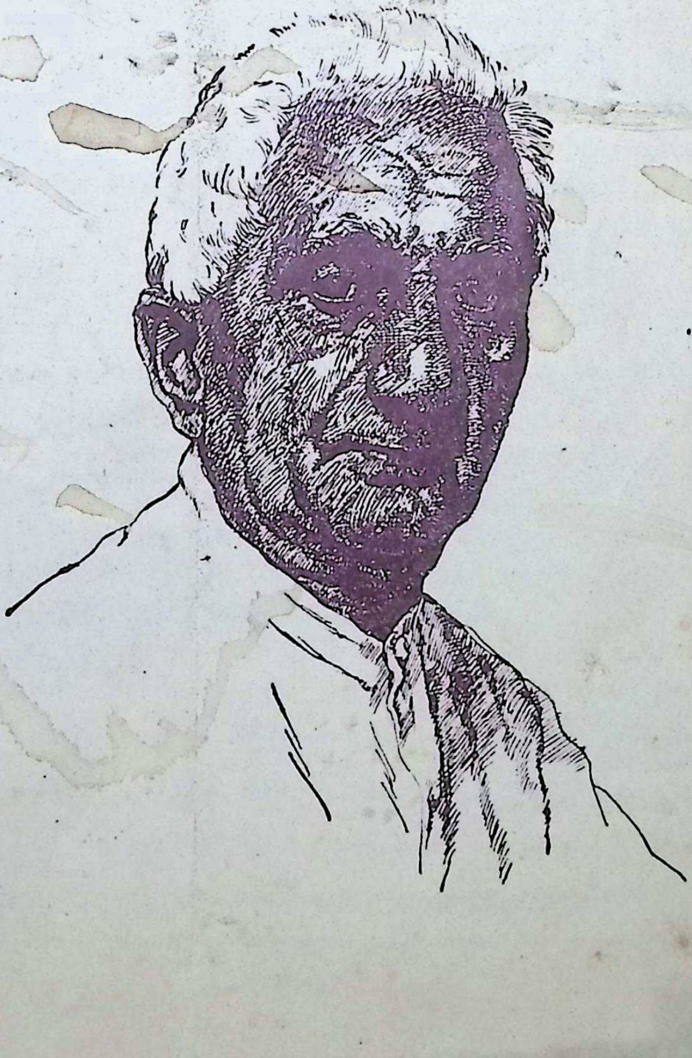

वैदिक धर्म

वर्ष ४८ : अंक ५ : चैत्र २०२४

स्वामी— स्वाध्याय-मंडल, पारडी [जि. बलसाड]

प्रधानसंपादक — पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

संपादक — श्री श्रुतिशील शर्मा, एम्. ए., शास्त्री, तर्कशिरोमणि

वि ष या नु क्र म णि का

१	रक्षक इन्द्र	[वैदिक प्रार्थना]	१०७
२	निष्कर्मता और क्रिया	श्री माताजी	१०८
३	संस्कृत साहित्यका विकास और उसके गत्यवरोधके कारण	श्री भवानीलाल भारतीय	१११
४	वैदिक घर	श्री वासुदेवशरण अग्रवाल	११७
५	पं. सातवलेकर जीवन-प्रदीप	मूल लेखक— श्री पु. पां. गोखले अनु० — श्री श्रुतिशील शर्मा	१२१
६	ऋग्वेदका सुबोध भाष्य	पं. श्री. दा. सातवलेकर	३४५ से ३७६

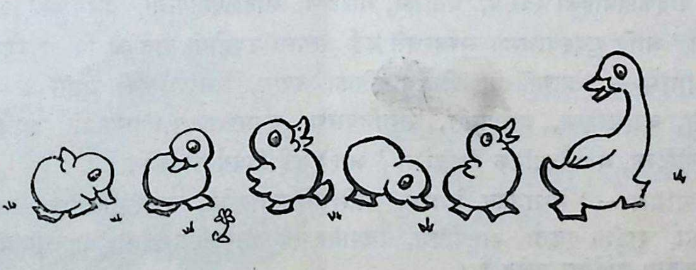

' वैदिक धर्म ' वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.

वी. पी. से रु. ५.६२, विदेशके लिये रु. ६.५० डाक व्यय अलग रहेगा।

मंत्री— स्वाध्याय-मण्डल, पो.- ' स्वाध्याय-मण्डल (पारडी) ' पारडी [जि. बलसाड]

मानवजीवनके रहस्योंसे भरपूर

एक संग्रहणीय खजाना

जी हां, मानवशरीरकी रचना विधाताके कौशल्यकी चरम सीमा है। शरीर स्वयंमें एक रहस्यमय विश्व है, जिसके कई रहस्योंका स्फोट आजतक भी नहीं हो पाया है।

मानवशरीरविज्ञानके विज्ञोंने इस शरीरका जितना विश्लेषण आज किया है, उससे कहीं अधिक और यथार्थ विश्लेषण हमारे प्राचीन ऋषिमहर्षियोंने इस शरीरका किया था। उन्होंने आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक इन तीन भागोंमें मानव शरीरके सारे रहस्योंका उद्‍घाटन किया है। इनसारे रहस्योंको यदि आप जानना चाहते हैं, तो अवश्य पढिए श्री पं. श्री दा. सातवलेकर लिखित अथर्ववेदके सुबोध भाष्यके पांचों भाग। वे पांच इसप्रकार हैं—

(१) ब्रह्मविद्या प्रकरण। (२) मातृभूमि और स्वराज्यशासन। (३) गृहस्थाश्रम।
(४) आरोग्य और दीर्घायुष्य। (५) मेधाजनन, संगठन और विजय।

इनमें प्रथम चार भाग विक्रीके लिए तैय्यार हैं, अन्तिम एक भाग अभी प्रेसमें है। उनके भी शीघ्र छपनेकी आशा है।

प्रथमभागमें— 'ब्रह्मज्ञान, ब्रह्मप्राप्तिका मार्ग, पाशवी सामर्थ्यका आत्मिकशक्तिसे प्रतिकार, गुह्य अध्यात्मविद्या, पूजनीय ईश्वर, आत्मशक्ति, ब्रह्माण्ड देह, आत्मज्योति, मुक्तिका मार्ग, मुक्तिका अधिकारी,' आदि कई आध्यात्मिकज्ञानके रहस्योंका संग्रह है।

दूसरे भागमें— 'वैदिकराष्ट्रगीत, राजाका कर्तव्य, राष्ट्रका अभ्युदय, राजाका चुनाव, कर, दुष्टका नाश, शत्रुपर विजय, युद्धनीति, विजयप्राप्ति, स्वशक्तिका विस्तार, युद्धसाधन' आदि कई राज्यशास्त्र-विषयक बातोंका वर्णन है।

तीसरे भागमें— 'पवित्र गृहस्थाश्रम, कुलवधू एवं पतिके गुण, वर और कन्याके गुण एवं उनका चुनाव, वैदिकविवाहका स्वरूप, धनार्जन, गोरक्षण, आदर्शपतिपत्नी, वीरपुत्रकी उत्पत्ति, रमणीय घर, भाग्यप्राप्ति' आदि गृहस्थाश्रमके सम्बन्धमें कई अत्यन्त उपयोगी बातोंकी विशद व्याख्या है।

चौथे भागमें— 'प्राणविद्या, दीर्घायुप्राप्तिका उपाय, अमरशक्तिकी प्राप्ति व उसका उपाय कल्याणकी प्राप्ति, आत्मरक्षण, वर्चःप्राप्ति, रोगनिवारण, यक्ष्मानाश, विषयनाश, आनुवंशिक रोगोंकी चिकित्सा, हिप्नोटिज्म, मनोवैज्ञानिक चिकित्सा' आदि कई विषयोंका वर्णन है।

पांचवें भागमें— 'मेधाजनन, मेधाकी प्राप्ति, मित्रतावर्धन, वनस्पतिविज्ञान, ब्रह्मचर्य, संगठन, मातृभूमिकी रक्षा, राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रपोषण, धनप्राप्ति एवं आन्तरिक तथा ब्रह्मशक्तियों पर विजय' आदि कई उल्लेखनीय बातोंका वर्णन है।

सभी भाग मूलमंत्र, अर्थ, भावार्थ, तथा स्पष्टीकरणसे युक्त डबलक्राऊन ८ पेजी साइजके क्रीमवोव पेपरसे समृद्ध एवं आकर्षक गेटअपसे सम्पन्न हैं। प्रत्येक भागकी कीमत १२ रु. (डा. व्य. पृथक्) है। भागोंकी छपाई सीमित संख्यामें ही हुई है। अतः न पानेकी निराशासे बचनेके लिए आज ही अग्रिम धन भेजकर पार्सलसे या वी. पी. से मंगायें। मुफ्त सूचीपत्रके लिए लिखें—

मंत्री— स्वाध्याय मंडल, पोस्ट- 'स्वाध्याय मंडल (पारडी)' पारडी [जि. बलसाड]

वैदिकधर्म

रक्षक इन्द्र

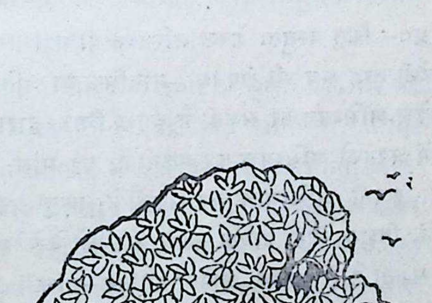

स नः प्रप्रिः पारयाति स्वस्ति नावा पुरुहूतः ।
इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ॥

(ऋ० ८।१६।११)

(सः प्रप्रिः) सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाला वह इन्द्र (नः पारयाति) हमें सब संकटोंसे पार करे, (पुरुहूतः) अनेकोंके द्वारा सहायतार्थ बुलाये जानेवाला इन्द्र (नावा स्वस्ति) सागरमें नावके समान हमारा कल्याण करनेवाला हो, (इन्द्रः) वह इन्द्र (विश्वाः द्विषः अति) सारे शत्रुओंसे हमें पार करे ।

वह ऐश्वर्यवान् परमात्मा सब संकटोंसे पार करानेवाला है । वह अपने भक्तोंकी हर तरहसे रक्षा करता हुआ उन्हें वह शत्रुओंसे भी उत्तम प्रकारसे सुरक्षित रखता है ।

निष्कर्मता और क्रिया

(लेखिका— श्री माताजी, श्री अरविन्दाश्रम, पांडिचेरी - २)

卐

'निर्जनतासे प्रेम ज्ञानकी ओर झुकावका लक्षण है, किंतु स्वयं ज्ञानकी उपलब्धि केवल तभी होती है जब हम निर्जनताको भीडमें, युद्धमें तथा हाटबाजारमें सदा स्थिर रूपसे अनुभव करें।

जब तुम महान् कार्योंको कर रहे होते हो और बडे परिणाम उत्पन्न कर रहे होते हो उस समय यह बोध कर सको कि तुम कुछ नहीं कर रहे हो, तो जान जाओ कि भगवान्‌ने तुम्हारी पलकोंपर लगी अपनी मुहर हटा ली है।

जब तुम पर्वतकी चोटीपर अकेले, अडोल और निःशब्द बैठे होते हो, उस समय तुम उन क्रांतियोंको देख सको जिन्हें तुम संचालित कर रहे हो, तो तुम्हें दिव्य दृष्टि प्राप्त हो चुकी है और तुम बाह्य रूपोंसे मुक्त हो।

निष्कर्मतासे प्रेम मूर्खता है और निष्कर्मतासे घृणा भी मूर्खता है; निष्कर्मता कोई वस्तु है ही नहीं। वह पत्थर जो बालूके ऊपर जडवत् पडा होता है, जो यों ही राह चलते ठुकरा दिया जाता है, वह अपने फल गोलार्धोंपर उत्पन्न करता रहता है।"

—श्री अरविन्द

यह वह अनुभव है जो मुझे इन दिनों हुआ है, यह कल या परसों हुआ था। एक अदम्य शक्तिकी भावना, जो सब कुछपर शासन करती है; जगत् वस्तुएं, लोग, सभीको, सब कुछको, बिना इसकी आवश्यकताके कि वस्तुएं भौतिक रूपमें हिले-डोलें, और यह भौतिक स्थूल अति-क्रिया केवल उस झागके समान है जो पानीके अत्यंत वेगसे बहनेपर रूप लेती है— ऊपरी तलकी झाग- किंतु शक्ति एक सर्व-शक्ति संपन्न धाराके समान नीचे बहती रहती है।

और कुछ भी कहनेको नहीं है।

तुम सदा इसी तथ्यपर पहुंचते हो। जानना, यह ठीक है; कहना, यह अच्छा है; करना, यह बहुत बढिया है; किंतु होना, यही एक मात्र वह वस्तु है जिसमें शक्ति है।

और देखो, लोग अस्थिर हो उठते हैं, क्योंकि वस्तुएं शीघ्रतासे नहीं होती; तब मैंने अंतःदर्शनमें उस निर्माणको, उस दिव्य सृष्टिको देखा, जो नीचे रूप ले रही है, सर्वशक्ति संपन्न, अदम्य- सबकुछके होते हुए भी, सारी ऊपरी हलचलोंके बावजूद।

प्र०— किंतु शक्तिकी इस विराट् धाराको क्या अपनी अभिव्यक्तिके लिये साधनोंको आवश्यकता है?

उ०— एक मस्तिष्ककी।

प्र०— किंतु वस्तुतः केवल मस्तिष्क ही नहीं। यह शक्ति पहलेकी तरह अब भी अपनेको मानसिक या अतिमानसिक तरीकेसे अभिव्यक्तकर सकती है यह शक्तिके द्वारा प्राणिक रूपमें अपनेको अभिव्यक्त कर सकती है; यह मांस-पेशियोंके द्वारा अपनी अभिव्यक्ति कर सकती है; किंतु यह भौतिक रूपमें, विशुद्ध और प्रत्यक्ष रूपमें अपनेको कैसे अभिव्यक्त कर सकती है (क्योंकि आप 'भौतिक-शक्ति' की प्रायः चर्चा किया करती हैं)? ऊपरकी क्रिया और यहांकी सच्ची क्रियामें क्या अंतर है?

उ०— प्रत्येक समय जब मैं इस शक्तिके प्रति सचेतन हुई, मुझे एक ही जैसी अनुभूति हुई। ऊपरका संकल्प एक स्पंदन द्वारा अपनेको अनूदित करता है, जो निश्चय एक प्राणिक शक्तिको अपने ऊपर ओढ लेता है, किंतु जो सूक्ष्म-भौतिक धरातलपर क्रिया करता है। तुम एक विशेष प्रकारके स्पंदन का अनुभव करते हो, जिसका वर्णन करना कठिन है पर जो किसी घनीभूत वस्तु (बिखरी हुई नहीं) जैसा प्रतीत होता है, एक ऐसी वस्तु-सा जो वायुसे अधिक घनीभूत है, जो

अत्यधिक एकरस है, एक स्वर्णिम दीप्ति लिये हुए, प्रचंड प्रेरक शक्तिसे युक्त है, और जो एक प्रकारके संकल्पको व्यक्त करती है (जिसका रूप मानव संकल्पके जैसा नहीं, जो विचार नहीं अपितु अंतर्दर्शनकी तरहका है; यह एक अंत· र्दर्शनके समान है जो चरितार्थ होनेके लिये आग्रह कर रहा है,) एक ऐसे क्षेत्रमें जो स्थूल जड–पदार्थके बडा निकट है, किंतु जो दिखलायी नहीं पडता– केवल अंतर्दृष्टि ही इसे देख सकती है। और यह स्पंदन लोगोंपर, वस्तुओं और परि-स्थितियोंपर दवाव डाल रहा है, उन्हें अपने अंतर्दर्शनके अनुरूप ढालनेके लिये। और वह अदम्य है। वे लोग भी जो इसके उलटा सोचते हैं, इससे चाहते हैं, न चाहते हुए भी वही करते हैं जिसे यह चाहता है, वे वस्तुएं भी जिनका स्वभाव ही विरोध करना है, सही रास्तेपर ले जायी जाती हैं।

राष्ट्रोंके भीतर घटनेवाली घटनाओंके लिये, राष्ट्रोंके बीचके संबंधके लिये, पार्थिव परिस्थितियोंके लिये यह इसी प्रकार क्रिया करती है; सतत, निरंतर, एक प्रचंड शक्तिके समान। और तब यदि कोई स्वयं भागवत संकल्पके साथ तादात्म्य-की अवस्थामें हो तो वह बिना किसी विचारके हस्तक्षेपके, बिना धारणाओं या विचारणाओंके इसे अनुसरण करता, देखता और जानता है। +

पार्थिव चेतनामें और जडपदार्थमें तमस्का प्रतिरोध यह परिणाम उत्पन्न करता है कि यह कार्य सीधा और सामं-जस्यपूर्ण होनेके स्थानपर अव्यवस्थित तथा विसंगति, अस्त-व्यस्तता एवं संघर्षसे भरा हुआ हो जाता है; ऐसा न होकर कि सबकुछ, यों कहो कि 'सामान्य रूपसे' व्यवस्थित हो जाय, बिना संघर्षके, (जैसा कि होना चाहिए), यह सारा तमस् जो विरोध एवं प्रतिरोध करता है, सबकुछको एक ऐसी निश्चित क्रिया बना देता है जिसमें सभी वस्तुएं धक्कम धुक्की करती रहती हैं और अव्यवस्था और विनाश चालू रहता है, जो केवल, प्रतिरोधके कारण ही आवश्यक हो जाता है, किन्तु जो 'अनिवार्य' नहीं था, होता भी नहीं– सच पूछो तो उसे होना भी नहीं चाहिए था। क्योंकि यह संकल्प, यह शक्ति पूर्ण सामंजस्यकी शक्ति है जिसमें प्रत्येक वस्तु अपने स्थानपर होता है और यह विलक्षण रूपसे व्यवस्था लाती है, यह एक अतीव प्रकाशमयी एवं पूर्ण व्यवस्था के रूपमें आती है जिसे व्यक्ति, यदि उसे अंतर्दृष्टि हो तो देख सकता है, किंतु जब वह नीचे उतरती और जडपदार्थ-पर दबाव डालती है तब सबकुछ खलबलाना और प्रतिरोध करना आरंभ कर देता है। अतः इन अव्यवस्थाओं, अस्त-व्यस्तताओं और विनाशकोंके लिए भागवत क्रिया और भागवत शक्तिको दोषी ठहरानेकी बात सोचना, यह भी एक मानव मूर्खता है। यह तमस् (दुर्भावनाकी बात छोड दो) है, तमस्, जो विनष्टिको उत्पन्न करती है। यह नहीं कि विनष्टिकी इच्छा की गई थी, यह भी नहीं कि इसे पहलेसे देख लिया गया था, प्रतिरोध ही इसे 'उत्पन्न' करती है।

और तब इसके साथ भागवत कृपाके कार्यकी अंतर्दृष्टि भी सम्मिलित हो जाती है, जो आती है और जहां कहीं भी संभव हुआ, अर्थात् जहां कहीं भी वह स्वीकारी गयी, बुरे परिणामोंको क्षीण कर देती है। यही इस बातको स्पष्ट करता है कि पार्थिव तत्व–मानव तत्वकी अभीप्सा, श्रद्धा और पूर्ण विश्वासमें सामंजस्य स्थापित करनेकी शक्ति होती है, क्योंकि ये भागवत कृपाको आने एवं अंध–प्रतिरोधके परिणामोंको सुधारनेकी अनुमति देते हैं।

यह एक स्पष्ट, स्पष्ट, ब्यौरोंमें भी स्पष्ट अन्तर्दर्शन है।

यदि कोई चाहे तो भविष्यवाणी भी कर सकता है और जो उसने देखा है उसे कह सकता है। किंतु एक प्रकारकी अति–करुणा होती है जो भविष्यवाणी करनेसे रोकती है, क्योंकि सत्यकी वाणीमें अभिव्यक्तिकी एक शक्ति होती है,

---

+ यहां यह जानना रोचक होगा कि इस वार्तालापसे जरा पहले माताजीसे यह प्रश्न पूछा गया था; "क्या वियत-नाममें अमरीकियोंकी उपस्थिति या उनका हस्तक्षेप उचित है? इसका माताजीने यह उत्तर दिया;" तुम किस दृष्टिकोणसे पूछ रहे हो?

यदि दृष्टिकोण राजनीतिक है– राजनीति झूठकी खान है और मेरा इसमें कोई संबंध नहीं।

यदि दृष्टिकोण नैतिक है— नैतिकता वह ढाल है जिसका सामान्यजन सत्यसे अपनी रक्षाके लिये प्रयोग करते हैं।

यदि दृष्टिकोण आध्यात्मिक है— केवल भगवत्–इच्छा ही न्याय्य है और मनुष्य इसीको अपने सभी कर्मोंमें विकृत और जाली बना देते हैं।

और प्रतिरोधके परिणामोंको बता देनेसे वह अवस्था ठोस रूप ले लेगी तथा भागवत कृपाकी क्रियाको कम कर देगी। इसीलिए जब कोई उसे देखता भी है तब भी उसे कह नहीं सकता, कहना चाहिए भी नहीं।

किंतु श्री अरविन्दके कहनेका तात्पर्य अवश्य यही है कि वह बल या वह शक्ति जो सब कुछ करती है– जब कोई उसे देखता है या उसके साथ एक हो जाता है, तब उस घडी वह उसे जानता भी है, और वह यह जानता है कि यही वह एकमात्र वस्तु है जो क्रिया करती है और सृजन करती है; शेष सबकुछ उस क्षेत्रका, उस जगत् या जडपदार्थ या तत्वका परिणाम है जिसमें वह क्रिया करती है– यह उस प्रतिरोधका परिणाम है, किंतु यह वह 'क्रिया' नहीं है। 'उसके' साथ एकत्व स्थापित करनेका अर्थ है उस 'क्रिया' के साथ एकत्व स्थापित करना। और जो कुछ नीचे है उसके साथ एकत्व स्थापित करनेका अर्थ है प्रतिरोधके साथ एकत्व स्थापित करना।

तब क्योंकि यह कुलबुलाती है, अस्थिर हो उठती है, संकल्प करती है, सोचती है, योजनाएं बनाती है......यह समझती है कि यह कुछ कर रही है यह प्रतिरोध करती है।

जरा बादमें (थोडे समयके बाद) मैं तुम्हें अत्यंत छोटी–छोटी वस्तुओंके उदाहरण दे सकूंगी, यह दिखलानेके लिये कि शक्ति कैसे कार्य करती है, और उसमें क्या वस्तु हस्तक्षेप करती है और क्या उसमें घुल–मिल जाती है, अथवा कौनसी वस्तु इस शक्ति द्वारा चालित होती है और कौनसी इसकी गतिको विकृत करती है, और इसके परिणामको भी, अर्थात् वह भौतिक बाह्य रूप जैसा कि हम उसे देखते हैं। एक बहुत छोटीसी वस्तुका भी उदाहरण, जिसका संसारमें कोई महत्व नहीं है, हमें इस बातका स्पष्ट बोध प्रदान करता है कि प्रत्येक वस्तु यहां कैसे उत्पन्न होती और कैसे विकृत हो जाती है।

और ऐसा सभी वस्तुओंके साथ, सदा–सर्वदा होता है। और जब हम कोषिकाओंका योग कर रहे होते हैं तब भी यही बात देखनेमें आती है: वहां एक ऐसी शक्ति है जो कार्य करती और तब शरीर इस क्रियाका क्या उपयोग करता है।...

तत्काल ही तब 'क्यों' और 'कैसे' का प्रश्न आ जाता है। किंतु यह क्षेत्र मानसिक कुतूहलका है। क्योंकि प्रमुख बात है प्रतिरोधका अंत करना। यही है प्रमुख वस्तु, प्रतिरोधका अंत करना, जिससे कि विश्व वह बन जाय जो उसे बनना चाहिए— एक सामंजस्यपूर्ण, आलोक पूर्ण, अद्भुत शक्तिको, एक अद्वितीय सौन्दर्यकी अभिव्यक्ति। पीछे जब प्रतिरोध समाप्त हो गया हो और कोई कुतूहलवश यह जानना चाहे कि ऐसा क्यों हुआ... तो उसका कुछ महत्व नहीं होगा। किंतु अभी इसका 'क्यों' खोजनेसे नहीं वरन् सच्चीवृत्ति अपनानेसे हमें उपचार प्राप्त होगा। यही एक मात्र महत्वपूर्ण वस्तु है।

पूर्ण समर्पण द्वारा पूर्ण आत्म–निवेदन द्वारा– यदि कोई कर सके तो प्रत्येक कोषिकामें ही इसे करके– प्रतिरोधका अंत करना।

(तब) ये (कोषिकाएं) इसी तीव्र आनन्दको प्राप्त करना आरंभ करती हैं, जो और कुछ नहीं, केवल भगवान् के द्वारा, भगवान्के लिए, भगवान्के भीतर अस्तित्व रखनेसे ही प्राप्त होता है।

जब यह सर्वत्र स्थापित हो जाय तब सबकुछ ठीक हो जाएगा।

संस्कृत साहित्यका विकास और उसके गत्यवरोधके कारण

(लेखक— श्री भवानीलाल भारतीय, एम्. ए.)

*

संस्कृत भाषाका इतिहास सम्भवतः विश्वकी प्राचीनतम उपलब्ध भाषाका इतिहास है। तुलनात्मक भाषाविज्ञानने संसारकी भाषाओंका जो पारिवारिक वर्गीकरण किया है, उसके अनुसार भारोपीय परिवारकी भाषायें आजके सभ्य और समृद्ध राष्ट्रोंकी भाषायें होनेके कारण सर्वाधिक महत्त्व रखती हैं। भारोपीय परिवारमें ही संस्कृत, फारसी, लैटिन, ग्रीक, जर्मन, फ्रैन्च, अंग्रेजी आदि वे प्राचीन और नवीन भाषायें आती हैं जिनके माध्यमसे मानव जातिकी सभ्यता और संस्कृतिको अभिव्यक्ति मिली है। अबतक यही समझा जाता रहा था कि संस्कृत ही भारोपीय परिवारकी प्राचीनतम भाषा है, परन्तु भाषाविज्ञानके आचार्योंने यह सम्भावना प्रकट की है कि संस्कृतके पूर्व भी एक आदिम भारोपीय भाषा प्रचलित थी। यद्यपि इस आदिम भाषाका अस्तित्व अभी तक सम्भावना तथा कल्पनातक ही सीमित है, तथापि यह माननेमें कुछ भी विप्रतिपत्ति नहीं होनी चाहिए कि आजकी प्रचलित भाषाओंमें संस्कृत ही मनुष्य की पुराणतम भाषा है।

संस्कृतके साहित्यका प्रारम्भ हम वेदोंके कालसे मान सकते हैं। ऋग्वेदको मानव जातिका प्राचीनतम ग्रन्थ घोषित किया गया है। वेदोंकी भाषा वैदिक संस्कृत है जो व्याकरणकी दृष्टिसे लौकिक संस्कृतसे कई अंशोंमें भिन्न है। वेदार्थके लिए पाणिनीय अष्टाध्यायी उतनी सहायक नहीं होती, जितने निरुक्त, निघण्टु तथा प्रातिशाख्य आदि ग्रंथ। ग्रन्थ रूपमें वेदोंकी संहिताओंका संकलन कब हुआ, यह अभी तक विवादास्पद है। लगभग समस्त संस्कृत साहित्य में चारों वेदों अथवा वेदत्रयीका उल्लेख मिलता है। अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण, पूषा, सोम आदि देवताओंकी स्तुतिके मंत्रोंका विशाल संग्रह ही ऋग्वेद है जिसमें आर्योंके प्राचीनतम धर्म, मतविश्वास तथा दर्शन एवं सृष्टि विद्या विषयक सिद्धान्तोंका संग्रह हुआ है।[1] पाश्चात्य मतके अनुसार ऋग्वेदके अतिरिक्त शेष तीन संहिताओंका काल पर्याप्त बाद का है। ऋग्वेद यदि ज्ञानकाण्डका भण्डार माना जाता है जो यजुर्वेदको कर्मकाण्ड विधायक संहिता कहना उपयुक्त होगा। यजुर्वेदमें ऋचायें तथा गद्य दोनों ही मिलते हैं। अग्निहोत्र, दर्शपौर्णमास, अश्वमेध, राजसूय, पुरुषमेध, आदि विभिन्न यज्ञ यागोंकी विधियां यजुर्वेदमें वर्णित हुई हैं। यजुर्वेदका अन्तिम अध्याय ईशोपनिषद्के नामसे प्रसिद्ध है जिसमें ब्रह्मज्ञानका विवेचन हुआ है। सामवेदमें मौलिकताका अंश न्यून है। 'गीतिषु सामाख्या'[2] जैमिनिके इस सूत्रके अनुसार सामवेदमें गीतितत्त्वकी प्रधानता है, इसलिए ऋग्वेदके ही अधिकांश मन्त्रोंको संगीत विधिके द्वारा प्रस्तुत करना सामसंहिताका प्रमुख लक्ष्य रहा है। अथर्ववेदकी रचना सबसे पीछे हुई, यह पाश्चात्य लोग मानते हैं। कथ्य और शैली दोनों दृष्टियोंसे विचार करनेपर अथर्ववेदमें कई नवीनतायें दृष्टिगोचर होती हैं। अथर्ववेदमें लोकविश्वासकी प्रधानता है। आध्यात्मविद्याके अतिरिक्त आयुर्वेद,

---

१ यह मत पाश्चात्य विद्वानोंका है। लेखक

२ पूर्व मीमांसा २।१।३६

गार्हस्थ्यशास्त्र, स्त्री–पुरुषका काम सम्बन्ध, औषधिविज्ञान, राजनीति, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, शरीरविज्ञान जैसे अनेक विषय अथर्ववेदमें वर्णित हैं। पाश्चात्य विद्वानों के मतानुसार अथर्ववेद लोकमें प्रचलित झाडफूंक, टोने, टोटके, जादू, मंत्र, गण्डे तावीज तथा मारण, मोहन, उच्चाटन जैसी अभिचार प्रधान विधियोंका एक बृहत् संग्रह है।

कालान्तरमें प्रत्येक वेद संहिताकी विभिन्न शाखाओंका ऋषि समुदाय द्वारा प्रवचन हुआ। यह शाखा प्रवचनका कार्य शताब्दियोंतक चलता रहा। शाखाओंके निर्माणका कार्य देश, काल और अध्येता छात्रकी आवश्यकताओंको ध्यानमें रखते हुए किया गया। वेदोंकी व्याख्या, प्रवचन तथा वेदार्थके अन्वेषणका कार्य सहस्राब्दियोंके लम्बे समयको अपने भीतर समेटे हुए है। इस विस्तृत कालमें प्रत्येक शाखाकी संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् और कल्पसूत्रोंका पृथक् निर्माण होता गया। समस्त शाखायें ११३१ बतलाई जाती हैं, जिनमेंसे कुछको छोडकर शेष अनुपलब्ध हैं।

संहिताओंके पश्चात् ब्राह्मण ग्रन्थोंका काल आता है। ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ ब्राह्मण चारों वेदोंसे क्रमशः सम्बन्धित हैं। आरण्यक और उपनिषद् इन ब्राह्मण ग्रन्थोंका ही आध्यात्मविद्या प्रधान अंश है। आर्यसमाजके प्रवर्तक स्वामी दयानन्दकी सम्मतिमें ब्राह्मण ग्रन्थ वेदोंके व्याख्यान हैं। जिनमें विभिन्न मंत्रोंको प्रतीकें धरकर उनकी व्याख्या की गई हैं।[३] मन्त्रार्थ विवेचनके अतिरिक्त ब्राह्मणोंमें याज्ञिकविद्याकी रहस्य मूलक व्याख्या, धर्म और आध्यात्मिक विषयोंपर संवाद वैदिक शब्दोंकी व्युत्पत्तिमूलक व्याख्यायें उपलब्ध हैं। आरण्यकों और उपनिषदोंमें वर्णित आध्यात्मविद्या भारतीय दार्शनिक कल्पनाका सर्वोच्च सोपान है। मोक्षाभिलाषी मुमुक्षु लोगोंके लिए उपनिषदोंके अध्ययनसे बढकर और कोई तपश्चर्या नहीं मानी गई है। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष्की गणना वेदांगोंमें होती है। वेदार्थको समझनेके लिए वेदके षडंगों का ज्ञान अनिवार्य माना गया है। इन विषयोंसे सम्बन्धित सैंकडों ग्रन्थोंकी रचना हुई है जिसका अद्यावधि यथार्थ मूल्यांकन नहीं हो पाया है।

षड्दर्शन और तत् सम्बन्धी विपुल साहित्य संस्कृत भाषामें लिखे गये दार्शनिक ग्रन्थोंकी एक नवीन विद्या हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है। मूल दर्शन सूत्रशैलीमें लिखे गये हैं, परन्तु इस सारगर्भित, सूक्ष्म और थोडेमें बहुत कह सकनेवाली दुरुह शैलीकी व्याख्यामें भाष्य, प्रवचन, वार्तिक विवरण, तात्पर्य आदि अभिधानवाले अनेक ग्रन्थ लिखे गये जिनमें भारतकी दार्शनिक मनीषाको अभिव्यक्ति मिली। शंकर, वाचस्पति, कुमारिल, वात्स्यायन, उद्योतकर, उदयन, विज्ञानभिक्षु जैसे महान् प्रतिभाशाली दार्शनिकोंने जिस गरिमापूर्ण वाङ्मयका निर्माण किया, वह संस्कृत साहित्यकी स्थायी निधि है।

इसी प्रकार मनु, याज्ञवल्क्य, पाराशर, शौनक, उशना, नारद, विष्णु, हारीत आदि विभिन्न ऋषियोंके नामसे उपलब्ध होनेवाली स्मृतियाँ विभिन्न युगोंके सामाजिक विधिविधानों तथा न्याय, राजनीति, शासन और वर्णाश्रम विधिके महत्त्वपूर्ण नियमोंका संग्रह है। कालान्तरमें धर्मशास्त्र विषयक विपुल साहित्यका निर्माण हुआ। विवाह, दायभाग, जातियोंके अधिकारों और कर्तव्योंके विधान तथा वर्णधम विवेचनसे सम्बन्धित विषयोंको विज्ञानेश्वर, मित्रमिश्र, कमलाकरभट्ट, स्मार्त रघुनन्दन भट्टाचार्य जैसे धर्मशास्त्रके निबंधकारोंने उपनिबद्ध किया। सम्भवतः किसी अन्य भाषामें धर्म, आध्यात्म, दर्शन और सामाजिक विधिविधानसे सम्बन्धित इतना विपुल साहित्य नहीं लिखा गया, जितना संस्कृतमें।

रामायण, महाभारत और अष्टादश पुराणोंका काल भा संस्कृत साहित्यका समृद्ध युग कहा जा सकता है। यद्यपि रामायण और महाभारत महाकाव्य कहलाते हैं तथापि उनमें इतिहासकी सामग्री भी विपुल मात्रामें पाई जाती है। सम्भवतः संस्कृतके ही ये दो ऐसे ग्रंथ हैं जिनमें धर्म; शास्त्र, काव्य, इतिहास, पुराण आदि सभीके तत्त्व एकसाथ पाये जाते हैं। रामायणको तो आदि काव्य की संज्ञा प्रदान की गई है। वस्तुतः परवर्ती आलंकारिक आचार्योंने रामायणके आधार ही महाकाव्योंके लक्षणोंका निरूपण किया था क्योंकि सर्गबद्ध, धीरोदात्त नायक युक्त, जातिके सर्वांगीण व्यापक चित्रणसे युक्त, प्रकृति वर्णनसे विभूषित तथा एक महत् आदर्शको चित्रित करनेवाला महाकाव्य रामायणसे पूर्व संसारमें नहीं

३ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका– वेदसंज्ञाविचार।

लिखा गया। भारतीय वाङ्मयमें रामायण और महाभारत-की महत्ता निर्विवाद है। ऋषिकल्प महात्मा कृष्णद्वैपायनकी विमल मेधासे निसृत जय काव्य ही कालान्तरमें भारत और महाभारतका विपुल आकार धारण कर परवर्ती काव्यों और आख्यानोंका उपजीव्य बना। महाभारतके विषयमें इस उक्तिको अतिशयोक्ति नहीं कहा जा सकता कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष– इस पुरुषार्थ चतुष्टयका सर्वांगीण विवेचन ही महाभारतमें हुआ है। जो यहाँ है वही अन्यत्र है, जो यहाँ नहीं, वह कहीं नहीं। कौरव पाण्डवोंके युद्धके व्याजसे लेखकने मानव जीवनके उपयोगी सभी ज्ञान विज्ञानको भारतमें उपनिबद्ध किया है। धर्म, दर्शन, तत्त्वज्ञान, अध्यात्म, युद्धनीति, कूटनीति, समाजशास्त्र, विविध देशों और जातियों-के इतिवृत्त सभी कुछ तो महाभारतमें विद्यमान हैं।

सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और राजाओंके वंशानुक्रम का वर्णन करनेवाला पुराण साहित्य भी संस्कृत भाषाकी महान् सम्पत्ति है। सरल अनुष्टुप् छन्दमें विपुलकाय पुराण साहित्यका सृजन करनेवाले साहित्यकारोंने ज्ञान, भक्ति, कर्म, वैराग्य, और तपकी विभिन्न स्रोतस्विनियाँ प्रवाहित कर यह बताया कि भारतका धर्म विषयक मत विश्वास नितान्त उदार और लोकसंग्रह युक्त है। यद्यपि पुराणोंमें साम्प्र-दायिक भावनायें भी कम नहीं हैं तथापि तत्कालीन समाजके बहुमुखी चित्रणकी दृष्टिसे वे अद्वितीय हैं। समाज शास्त्रके तलस्पर्शी अध्ययनकी जो सामग्री पुराणोंमें बिखरी पड़ी है, उसका शोध विद्वानों द्वारा होना अभी बाकी है।

संस्कृतका शास्त्रीय साहित्य जितना समृद्ध है उतना ही उसका रसपरक लौकिक साहित्य भी। काव्य, नाटक, कथा, चम्पू, सूक्ति, सुभाषित, काव्यालोचन सभी विधायें संस्कृत साहित्यमें उपलब्ध होती हैं। प्रत्येक काव्याङ्ग पर सहस्रों ग्रन्थ लिखे गये। कवियोंमें कालिदास, भारवि, माघ और श्रीहर्षने जिन महत्त्वपूर्ण काव्य ग्रन्थोंका सृजन किया, वे किसी भी भाषाके लिये गर्वकी वस्तु हो सकते हैं। रघुवंश, मेघदूत, कुमारसम्भव, किरातार्जुनीय, शिशुपालवध तथा नैषधीय चरितने शताब्दियोंतक काव्य रसिकोंका मनोरञ्जन किया है और आज भी कर रहे हैं। इसी प्रकार नाटककारोंमें भास, कालिदास, भवभूति, शूद्रक, विशाखदत्त, भट्टनारायण आदिने जिन महनीय रूपक कृतियोंकी रचना की है, वे इस बातका पुष्ट प्रमाण है कि भारतमें नाट्यकलाका विकास नैसर्गिक रूपसे हुआ है और उसपर यवन नाटक कला आदि का प्रभाव देखना कल्पना मात्र है।

गद्यको कवियोंकी कसौटी माना गया है।[४] संस्कृतमें सुबंधु, बाण और दण्डी जैसे गद्यकार हुये जिनकी वासव-दत्ता, कादम्बरी, दशकुमार चरित जैसी कथायें गद्यका अमर स्वरूप प्रस्तुत करती हैं। काल्पनिक कथाओंके अतिरिक्त ऐतिहासिक वृत्तान्तोंको भी गद्यके माध्यमसे लिखा गया। कथा, आख्यायिका और चरित नामधारी गद्य रचनायें संस्कृतमें पर्याप्त संख्यामें पाई जाती हैं। पञ्चतंत्र और हितो-पदेश जैसे ग्रन्थ संस्कृतकी अपनी विशेषता हैं जिनमें पशु-पक्षियोंकी कथाओंके व्याजसे मनुष्यके लिये सारगर्भित नीति रत्नोंका संकलन किया गया है। इसी प्रकार गद्य-पद्यकी सम्मिलित विधा चम्पू संस्कृतमें ही पनपी ’ इन चम्पूकाव्योंकी रचना करते समय रचयिताओंके गद्य और पद्य लेखनकी क्षमताकी पूर्ण परीक्षा हुई है। सुभाषित सूक्ति-योंके संग्रह, नीति काव्य, उपदेशात्मक पद्य तथा सामान्य लौकिक तथ्योंका प्रतिपादन करनेवाले पद्योंका संस्कृतमें इतना अधिक प्राचुर्य है कि उसका सीमित स्थानमें सम्यक् विश्लेषण किया जाना भी कठिन है। इसी प्रकार विविध देवी, देवताओं और पूज्य पुरुषों तथा अवतारोंके प्रति श्रद्धा और भक्तिके भावोंसे परिपूर्ण जो स्तोत्रोंका महान् संग्रह है, वह भी अद्यापि शोध और अनुसंधानकी अपेक्षा रखता है।

संस्कृतमें काव्यालोचनकी परम्परा भी अति प्राचीन है। सम्भवतः भरतका नाट्यशास्त्र इस विषयका सबसे प्राचीन ग्रन्थ है जिसमें नाटकीय तत्त्वोंकी समीक्षा हुई है। भामह, दण्डी, वामन, ध्वनिकार आनन्दवर्धन, कुन्तक, क्षेमेन्द्र, मम्मट, विश्वनाथ, जगन्नाथ आदि आचार्योंने कालान्तरमें रस सिद्धान्त और औचित्य विचारको जिस प्रकार पुष्पित, पल्ल-वित और परिवर्धित किया वह यह सिद्ध करनेके लिये पर्याप्त है कि काव्यालोचनाका समृद्ध रूप संस्कृतमें शताब्दियों पूर्व विकसित हो चुका था। काव्यालंकार, ध्वन्यालोक, काव्य-प्रकाश, साहित्यदर्पण, रसगंगाधर आदि संस्कृत समालोचना के आकर ग्रन्थ हैं जिनपर कोई भी भाषा गर्व कर सकती है।

४ गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति।

वस्तुतः संस्कृत साहित्यकी पुनीत मन्दाकिनी वैदिक कालसे लेकर इतिहासके मुगलयुगतक निरन्तर, अबाध गति और अप्रतिहत वेगसे प्रवाहित होती रही है। यह अवश्य है कि समय समय पर उसका प्रवाह कभी मन्थर और कभी तीव्र गतिसे बहता रहा परन्तु गीर्वाणवाणीका यह रस स्रोत कभी सूखा नहीं। उत्तरवर्ती मुगलकालतक आते आते संस्कृत साहित्य धाराका मार्ग अवरुद्धसा होने लगा और ऐसी प्रतीति होने लगी कि कहीं यह रस निर्झर सूख न जाय। यहाँ हम उन कारणोंका विवेचन करें जो ईसाकी अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियोंमें संस्कृत भाषा और साहित्यके क्षेत्रमें उत्पन्न गत्यवरोधके लिये उत्तरदायी ठहराये जा सकते हैं। संस्कृत साहित्यकी रचना होनेके साथ साथ प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषायें भी समय समय पर साहित्य की अभिव्यक्तिके माध्यमके रूपमें प्रयुक्त होती रही हैं। यों भी कहा जा सकता है कि संस्कृतको जिस समय धर्म और साहित्यके क्षेत्रमें प्रधानता मिली हुई थी उस समय लोकमें सामान्य व्यवहारके लिये प्राकृत भाषाओंका प्रयोग होता था। कालान्तरमें प्राकृत भाषायें साहित्याभिव्यक्तिका माध्यम बनीं तो अपभ्रंश भाषायें जन व्यवहारमें प्रयुक्त होने लगीं। परंतु इन सब परिस्थितियोंमें संस्कृतमें निरन्तर साहित्य रचना होती रही, चाहे मात्रा की दृष्टिसे वह न्यूनाधिक ही रही हो। अपभ्रंश भाषाओंके पश्चात् देशी भाषाओंका काल आया। हिन्दी, बंगला, गुजराती, मराठी, उडिया, असमी आदि उत्तरभारतीय आर्य भाषायें साहित्यसे समृद्ध होने लगीं। देशी भाषाओंका साहित्यमें प्रयोग संस्कृतके साहित्यिक विकासके लिये बाधक सिद्ध हुआ। अबतक संस्कृतका शास्त्रीय (Classical) महत्त्व स्थिर हो चुका था। जन सामान्यने उसमें रुचि लेना कम कर दिया। वह केवल पण्डित और विद्वानोंकी भाषा रह गई। सामान्य जनता लोकभाषाओंमें रचित साहित्यसे रसभूति ग्रहण करने लगी। संस्कृतका जनतामें प्रचार भी दिनों दिन कम होता जा रहा था। संस्कृत भाषा और उसके धार्मिक साहित्यपर ब्राह्मणवर्णके एकाधिकारकी स्थापना मध्यकालमें सुदृढ हो चुकी थी। ऐसी स्थितिमें जनताके हर्ष, शोक, सुख, दुःख आदिकी अभिव्यक्तिसे शून्य संस्कृत भाषाका विकास क्रम रुक जाना स्वाभाविक ही था।

मुसलमानी शासनने भारतवासियोंके स्वधर्म, स्वभाषा और स्वसंस्कृतिके प्रति निष्ठाके भावों पर आघात किया। वे अपने साथ अरब और फारसकी भाषा और सेमेटिक धर्म और मध्यएशियाकी अरबी संस्कृति लाये। मुगलपूर्व मुसलमान शासकोंका भारतके स्वात्मबोधको कुचलनेमें बहुत बडा हाथ रहा है। वे यह सहन नहीं कर सकते थे कि भारतवासी स्वधर्म और स्वभाषा पर अभिमान करें। फारसी साहित्यको राजाश्रय प्राप्त होना और फारसी भाषाको राजकाजकी भाषाका पद मिलना संस्कृतकी प्रगतिमें एक बाधक कदम सिद्ध हुआ। यद्यपि मुगलोंका दृष्टिकोण अपने पूर्ववर्ती मुसलमान शासकोंसे भिन्न था, साहित्य और भाषाके सम्बन्धमें उन्होंने पर्याप्त उदार दृष्टिकोण प्रदर्शित किया। फारसी अरबी और हिंदी आदि लोक भाषाओंके कवियों और लेखकोंको प्रोत्साहन देनेके साथ साथ वे संस्कृत साहित्यकारोंका भी सम्मान करते थे! सम्राट् शाहजहाँ द्वारा अन्तिम संस्कृत कवि और आलंकारिक आचार्य जगन्नाथका सम्मानित किया जाना इस बातका पुष्ट प्रमाण है कि मुगलशासकोंमें संस्कृत भाषाके प्रति आदरका पर्याप्त भाव था। तथापि मुगल साम्राज्यके पतनके पश्चात् इतने बृहत् रूपमें संस्कृतका राज्याश्रय नहीं मिला, जिसके कारण अपनी प्रगतिको वह स्थायी रूपसे स्थिर रख सके।

यह एक सर्वसम्मत तथ्य है कि भाषायें लोकशक्ति और जनबलपर प्रगति करती हैं तथा साहित्यकी अभिवृद्धि बहुत कुछ राजा और शासनके प्रोत्साहनपर निर्भर रहती है। संस्कृतमें विक्रम और भोजके उदाहरण प्रसिद्ध हैं। संस्कृत कवियों, लेखकों और पण्डितोंको जो प्रोत्साहन शताब्दियोंसे मिलता रहा, वह उत्तरवर्ती मुगलकालतक आते आते क्षीण हो गया। राजपूत राजाओंका वर्चस्व ही क्षीण नहीं हुआ वे स्वयं भी परतंत्र हीनवीर्य अ र कापुरुष होकर अपने अस्तित्व मात्रकी रक्षाके लिये परोपजीवी बन गये। राजाओं और क्षत्रिय सामन्तोंमें विद्याका व्यसन समाप्त हो गया। निरन्तर भौतिक समृद्धि, ऐश्वर्यविलास और उद्दाम वासनापूर्तिमें निमग्न रहनेके कारण इन नामधारी हिन्दु राजाओंसे यह आशा नहीं की जा सकती थी कि वे उस संस्कृत साहित्यको प्रोत्साहन देते जिसमें मनुष्यके बहुविध विकासकी सम्भावना छिपी रहती है। राजाश्रय प्राप्त करनेवाले कवि और साहित्यकार भी संस्कृतको अपनी अभिव्यक्तिका माध्यम न बनाकर लोकभाषाओंमें काव्य रचना करके ही संतुष्ट हो जाते थे। उनका वैदुष्य और पाण्डित्य भी उस कोटिका

नहीं रह गया था, जिसके अभावमें संस्कृतके आकर ग्रन्थोंकी रचना सम्भव नहीं हो सकती।

संस्कृतके पठन पाठनकी परम्पराका क्षीण होना भी संस्कृत साहित्यके ह्रासका एक कारण बना। लोगोंने यह देखा कि लौकिक समृद्धि और राजदरबारमें सम्मान प्राप्त करानेमें अब संस्कृतभाषा सहायक नहीं रह गई है। इसके प्रतिकूल फारसी आदि इन भाषाओंका पठन, पाठन और अध्ययन लोगोंके लिये अधिक उपयोगी और अर्थकर हो गया था। जीविका निर्वाह हेतु फारसीका जितना महत्त्व था, उतना संस्कृतका नहीं। फलतः संस्कृतका पठन पाठन एक सीमित वर्गतक ही रह गया, जो या तो स्वकर्तव्य पालनवश संस्कृत पढते थे, अथवा जिनकी यह धारणा थी कि संस्कृत विद्याको पढ कर निःश्रेयस–प्राप्ति की जा सकती है। धर्म, कर्मकाण्ड आदिके सीमित उद्देश्यकी सिद्धिके लिए जो संस्कृत पढते थे अथवा ज्योतिष, आयुर्वेद जैसे व्यवसायोंमें सफलता प्राप्त करनेके लिए संस्कृतका अध्ययन करते थे उनका संस्कृत भाषा और साहित्यका ज्ञान कितना अपूर्ण और छिछला होता होगा, इसकी हम सहज ही कल्पना कर सकते हैं।

शताब्दियोंतक रचे जानेवाला संस्कृत साहित्य प्रतिपाद्य-विषय और शैलीकी दृष्टिसे पर्याप्त रूढ हो चुका था। उसमें नवीन भावोंको वहन करने और उन्हें अभिव्यञ्जित करनेकी क्षमता नहीं रह गई थी। संस्कृतका शास्त्रीय साहित्य धर्म और तत्त्वज्ञानको तो अभिव्यक्ति प्रदान कर सका परन्तु उसका लौकिक रसात्मक साहित्य मानवकी शृंगारोन्मुखी प्रवृत्तिको ही जाग्रत करनेमें समर्थ हुआ। यों तो संस्कृतके काव्य साहित्यमें मानवकी बहुमुखी प्रवृत्तियोंका आलेखन हुआ है, परन्तु शताब्दियोंतक एक ही ढर्रे पर चलते चलते उसमें रूढता आ जाना स्वाभाविक ही था। काव्य, नाटक, गद्य–साहित्यकी सभी विधाओंमें एकरसता, तथा राजा, राणी, अन्तःपुर सपत्नी, विदूषक और दूतीके क्रिया कलापोंका निरन्तर चित्रण यह बतानेके लिये पर्याप्त है कि साहित्यके कथ्यकी मौलिकता समाप्त हो चुकी थी और एक ही विषयकी पुनरावृत्ति और पिष्टपेषणकी प्रवृत्तिने साहित्यिक गतिविधियोंको अवरुद्धता प्रदान की।

यद्यपि संस्कृत वाङ्मयमें यथार्थवादी तत्त्व भी मिलते हैं। समाजके उच्च और नीच, आभिजात्य और अकुलीन, सुसंस्कृत और मूर्ख सभी वर्गोंका चित्रण इस साहित्यमें हुआ। शिव और शिवेतर, संस्कारी और जुगुप्साजनक सभी चित्र इस साहित्यमें अंकित हुये हैं तथापि उत्तरमध्यकालीन संस्कृत साहित्य जनताके अभावों और अभियोगों, उनके असन्तोष और उनकी भावनाओंको अभिव्यक्त करनेमें असमर्थ रहा। यद्यपि विचारोंकी यह जडता और प्रगतिका यह गत्यवरोध हिन्दी आदि अन्य भाषाओंमें भी उस कालमें दिखाई पडता है, तथापि संस्कृतके जनमानससे दूर हट जाने और जन भावनाओंकी अभिव्यक्तिमें असमर्थ हो जानेके कारण उसका साहित्यिक गतिरोध अधिक स्थायी सिद्ध हुआ। इसके विपरीत हिन्दी आदि लोक भाषाओंने शीघ्र ही जनताकी भावनाओंकी अभिव्यक्तिको अपना लक्ष्य बना लिया, फिर वे जनताकी सामान्य बोलचालकी भाषायें तो थीं ही, अतः लोककी युग सापेक्ष मांगोंके अनुसार अपने आपको ढाल लेना इन लोकभाषाओंके लिये कठिन नहीं था। संस्कृतकी स्थिति प्रतिकूल ही रही और उसका गतिरोध भी अधिक स्थायी प्रतीत होने लगा।

संस्कृत भाषा और साहित्यके गौरव और महत्त्वकी ओर हमारा ध्यान उस समय गया, जब भारतके तत्कालीन पाश्चात्य शासकोंने उसकी महत्ताको स्वीकार किया। विलियम जोन्स, एच. एच. विलसन, मोनियर विलियम, ग्रिफिथ आदि पाश्चात्य विपाश्चितोंने जब संस्कृतके अध्ययन और उसके साहित्यके मूल्यांकनका प्रयास तुलनात्मक भाषा-विज्ञानके सिद्धान्तोंके निर्धारणके संदर्भमें किया तो भारत-वासी मानो चौंक उठे। अबतक संस्कृत पिछडे हुए पण्डितवर्ग और उनके युगदृष्टिविहीन अन्तेवासियोंके वाग्-विलासकी भाषा समझी जाती थी, जिसके अध्ययनका भौतिक समृद्धिकी प्राप्तिकी दृष्टिसे कोई उपयोग नहीं था और जो न राज्य–सेवावृत्ति दिलानेमें ही सहायक होती थी। इसी संस्कृतके प्रति आदर और संभ्रमकी दृष्टि निक्षेप कर उसे पुनः अंगीकार करना एक चमत्कार ही समझा जायगा।

संस्कृतके प्रति आदर एवं अनुरागके भावोंको उत्पन्न करने तथा उसे पुनः अध्ययन तथा साहित्य प्रणयनका माध्यम बनानेके लिए जितनी प्रेरणा भारतवासियोंको उन

युरोपीय विद्वानोंसे मिली,[५] जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन संस्कृतके सारस्वत सरोवरका अवगाहन करनेके निमित्त अर्पित कर दिया था, उतनी ही प्रेरणा उन्हें धार्मिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरणके उन आन्दोलनोंसे भी मिली जो भारतमें नवयुगका संदेश प्रसारित कर रहे थे। आर्यसमाज इनमें अन्यतम था।[६] आर्यसमाजकी विचारधारा संस्कृतभाषा और उसके साहित्यमें अभिव्यक्त विचारोंसे सर्वथा अनुप्राणित और अभिपोषित था। संस्कृत भाषा और साहित्यके प्रचार प्रसारमें आर्यसमाजने अपना सक्रिय सहयोग ही प्रदान नहीं किया अपितु संस्कृत साहित्यकी गद्य, पद्य, चम्पू, नाटक, कथा, सुभाषित आदि विविध विधाओंके अन्तर्गत साहित्य रचना कर गीर्वाण वाणीके वाङ्मयको समृद्ध बनानेमें आर्यसमाजने अपने महान् दायित्वका निर्वाह किया।

---

५ पश्चिमने संस्कृतकी खोज की, जो कि पुनर्जागरणके समयसे यूरोपीय विचारधारामें सबसे सार्थक घटना कही जा सकती है।"– वे. राघवन 'आजका भारतीय साहित्य' (साहित्य अकादमी)

६ "इस आन्दोलनमें आर्यसमाजका संस्कृतके पुनरुत्थानसे घनिष्ठ सम्बन्ध है।" वे. राघवन उक्त ग्रन्थके पृ. ३०८ पर

गीता पुरुषार्थ–बोधिनी

[लेखक— श्री पं. श्री. दा. सातवलेकर]

'मैंने श्री पं. सातवलेकरजी की लिखी हुई श्रीमद्भगवद्गीता पर 'पुरुषार्थ–बोधिनी' टीका पढी और मैं उससे अत्यन्त प्रभावित हुआ। यह टीका पढकर मैं समझ सका कि गीता केवल आध्यात्मग्रंथ ही नहीं है, अपितु वह इस लोकको बनानेवाला ग्रंथ भी है। वह संसार छोडकर और वीतराग बनकर जंगलमें जानेका उपदेश नहीं देती, अपितु संसारमें ही रहकर पग–पग पर आनेवाले संकटोंसे किस प्रकार टक्कर ली जाए, इसका मार्ग बताती है। मेरी यह निश्चित धारणा है कि यह प्रत्येक संस्था व कालेजोंके द्वारा एक संग्रह करने योग्य ग्रंथ है।'

—महात्मागांधी

'यह गीता पर एक अनोखी टीका है, जिसने गीताके एक महत्वपूर्ण प्रश्न पर, जो आजतक विद्वानोंकी दृष्टिसे ओझल था, भरपूर प्रकाश डाला है। मुझे यह पढकर अत्यन्त आनन्द हुआ। मुझे आशा है कि पाठक इसे हृदयसे अपनायेंगे।'

—चिं. द्वा. देशमुख, उपकुलपति– दिल्ली विश्वविद्यालय

यह टीका अपने ढंगकी एक ही है। जिस किसीने भी इसे पढा, मुक्तकण्ठसे इसे सराहा। सभी उच्च कोटीके विद्वानोंने इसकी बडी प्रशंसा की। इसकी मांग अत्यधिक है, अतः पाठकोंके आग्रह पर हमें इसकी चौथी आवृत्ति निकालनी पडी। यह ग्रंथ हिन्दी, मराठी और अंग्रेजी तीन भाषाओंमें मिल सकती है, आप भी शीघ्रता कीजिए

शिक्षण–संस्थाओं तथा अन्य संस्थाओंको तथा व्यापारियोंको भी उचित कमीशन पर ये पुस्तकें मिल सकेंगी

पृष्ठ संख्या ८५०]　　[मूल्य ३०) रुपये (डा. व्य. पृथक्)

पुस्तक तथा विस्तृत सूचीपत्रके लिए लिखें—

व्यवस्थापक– स्वाध्याय मण्डल, पोस्ट– 'स्वाध्याय मण्डल (पारडी),' पारडी [जि. बलसाड] (गुजरात)

वैदिक घर

(लेखक— श्री डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल)

*

वैदिक कालमें गृह–निर्माणकी कलाका अच्छा विकास हुआ था। वास्तुकला–सम्बन्धी अनेक शब्द इसके प्रमाण हैं, जैसे स्कम्भ (घरोंकी छत आदि टेकनेके खम्भे)। इन्द्रको स्कभीयान्, अर्थात् सर्वोत्तम खम्भेका स्वामी कहा गया है (ऋ० १०।१११।५) घरका सूत्र छोडकर मापन किया जाता था (धाम ममे)। घरके विभिन्न भागोंको खम्भों पर टिकाते थे (स्कम्भेन धारयेत्: ऋ० ८।४१।१०)। एक मन्त्रमें दृढ आधार पर खडे किये गये तीन खम्भोंका उल्लेख है। उनके ऊपर तिकोनी या ढोलाकार छत बाँधी जाती थी (त्रयः स्कम्भासः स्कम्भितास आरभेः ऋ० १।३४।२)। स्तम्भके अधिष्ठान या बुनियादको धर्म्य कहते थेः स्कम्भं वरुणे (ऋ० १०।४४)।

बडे खम्भेको महत् स्तम्भ कहा जाता था। उसकी लाट-की ऊंचाई महत् स्कम्भ (ऋ० ६।४७) तथा केवल लाटकी ऊँचाई वर्ष्मन् (ऋ० ३।८।३) शब्दसे अभिहित थी और ऊँचे खम्भेको (ऊर्ध्वं तिष्ठः ऋ० ३।८।१) महान् लोकव्यापी सौभाग्यका प्रतीक माना जाता था (उच्छ्रयस्व महते सौभगायः ऋ० ३।८।२)। उसीसे यूप या इन्द्रध्वज का विकास हुआ। लिखा है कि इन्द्रने ऊँचे खम्भे पर द्युलोकको स्तम्भित कर रखा है (अयं महान् महता स्कम्भनेनोद्धामस्तम्भान् वृषभो मरुत्वान्: ऋ० ६।४७।५)। इस मन्त्रमें उत्तरकालीन लौकिक संस्कृतके स्तम्भ शब्दके स्तभ् धातुका प्रयोग हुआ है। उसीका यह सहयोगी शब्द है, जिससे हिन्दीके थम्भ और खम्भ शब्द निकले हैं। काष्ठकर्मके शिल्पी वनोंमें जाकर ऊँचे वृक्षोंको मापते थे और स्वधिति या कुल्हाडीसे उन्हें काटकर गिराते थे। उन्हें ही बडे खम्भोंका रूप दिया जाता था (वनस्पते स्वधितिर्वा ततक्षः ऋ० ३।८।६)।

वस्तुविन्यास या गृहमापन

घरके लिए कई शब्द प्रयुक्त हुए हैं। गृह, पस्त्या, सदन, दुरोष्ठ, हर्म्य आदि। सदनके तीन मुख्य भाग होते थे। यह स्पष्ट योजना गृह या प्रासाद निर्माणकी भारतीय परम्परामें बराबर चलती रही। पहला भाग सामनेके आंगन या अजिर–समेत गृहद्वार था। दूसरा भाग सदस् या बैठक थी, जिसे सभा और बादमें आस्थान–मण्डप भी कहा गया है। यह राजप्रसादका वह भाग था, जिसमें दरबार और अतिथि-स्वागत भी किया जाता था। घरका तीसरा भाग पत्नी सदन कहलाता था, उसीकी संज्ञा अन्तःपुर हुई। वैदिक युगमें घरके चौथे भाग अग्निशालाको, जहाँ श्रौत अग्नियोंका आधान किया जाता था, अग्निशरण भी कहते थे। कालान्तरके राजप्रसादोंमें यही देवगृह कहा जाने लगा। यहाँ राजा ऋषि, मुनि, पुरोहित आदि अतिथियोंका स्वागत करते थे। गृह–निर्माणके पूर्व व्यवस्थाके अनुसार उसका विन्यास या मापन किया जाता था। उसके लिए निमित या मित शब्द प्रयुक्त हुए हैं (अथर्व, ६।३।१९)। घर–शालाके बडे मापनको मित एवं अवान्तर भागोंको सूत छोडना कहते थे। वे छोटे–बडे कई प्रकारके होते थे। बडे-को 'बृहन्त मान' कहते थे (बृहन्तं मानं वरुण स्वधावः ऋ० ७।८८।५) और अपेक्षाकृत छोटेको शाला, जो कि मध्यम श्रेणीका घर होता था। किन्तु, नामोंके इस भेदका आग्रह नहीं किया जा सकता। उपनिषदोंमें 'महाशाला' शब्द भी प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वेदमें सहस्र स्थूण या सहस्र थूनियोंवाले घरोंका उल्लेख है (ऋ० २।४१।५; ५।६२।६)। निस्सन्देह इन महाप्रसादोंके सभामण्डपमें उसी प्रकारके सहस्र स्थूण लगाये जाते थे, जिस प्रकार मध्यकालमें मदुरा एवं चिदम्बरम् के सभामण्डप सुप्रतिष्ठापित किये गये। सहस्र स्थूणवाले इस प्रासाद–भागको 'सदस्' कहा गया है, जिससे सूचित होता है कि वह आस्थान–मण्डप ही था। वैदिक युगमें सभा और समिति इन दो संस्थाओंका उल्लेख आया है। सभा छोटी होती थी, समितिमें समस्त जनता 'विश्' का अधिवेशन किया जाता था, जिसमें कई सहस्र जनसंख्या एकत्र होती थी। उसीके लिए सम्भवतः सहस्र-स्थूण सदनका निर्माण किया जाता था।

सहस्रस्थूण सदनके समकक्ष ही ऐसे बडे गृह या प्रासादका उल्लेख है, जिसमें सहस्र द्वार होते थे। इसे 'बृहन्तमान, भी कहते हैं (ऋ० ७।८८।५)। मुख्य प्रवेश द्वारको प्रथम द्वार कहते थे, जो कालान्तरके द्वारप्रकोष्ठके समान था। इनके छोटे घरोंका भी उल्लेख है, जिन्हें शतमुखी, अर्थात् एक सौ खम्भोंवाला और शतद्वार कहा गया है। प्राचीन पाटलीपुत्र या कुम्हरारमें चन्द्रगुप्त-सभाके जो अवशेष मिले हैं, उनमें अस्सी खम्भोंवाला मण्डप लगभग शतमुखी सदनके अनुरूप है। अन्तर इतना ही है कि ये खम्भे मौर्यकालीन चमकीले पत्थरके हैं, जिनकी छत सम्भवतः काष्ठशिल्प की थी। दिव्य शिल्पको सहस्रस्थूण और मानुष शिल्पको शतस्थूण कहा जा सकता था। एक स्थान पर सुनहली चमक के अयःस्थूण या ताँबेकी पतली चादरका खोल मढे हुए लकडीके स्तम्भ (अयःस्थूण) का भी उल्लेख है, जिसपर सुनहला काम भी किया जाता था। घरमें कई दीवारें होती थीं, जिनके आधार पर उन शालाओंको द्विपक्ष, चतुष्पक्ष, षट्पक्ष आदि विशेषण दिये जाते थे (अथर्व, ९।३।२१)। पक्षका अर्थ वही था, जो आज भी है, अर्थात् पक्खा, पाख या भित्ति। कोठे या कोठरीको 'कुलाय' कहते थे और कोठों के भीतर कोठे या कोठोंकी कई पंक्तियाँ बनानेकी प्रथा थी (कुलाये अधिकुलायम्)। खण्ड या भूमिको कोष कहा जाता था। कई खण्डोंमें बने हुए घरोंका भी उल्लेख है। सिन्धुघाटीमें भी कितने ही द्विभूमिक घर पाये गये हैं। घरमें आँगन या चौकको 'उदर' कहा जाता था। इसे ही कालान्तरमें कक्ष्या कहने लगे। घरका पत्नीसदन नामक भाग भी चौक या कक्ष्या ही थी, जिसके आगेका भाग सदस्, सदन, उदर या सभा कहलाता था। सदस् और अग्निशाला का निर्माण कराया जाता था।

घरके अवान्तर भाग और अंग-प्रत्यंग

अथर्ववेदके दो शालासूक्तों (९।३; ३।१२) में घरके अवान्तर भागोंका विवरण दिया हुआ है। पहली उल्लेखनीय बात यह है कि बडे घरोंका निर्माण भी काष्ठशिल्पसे किया जाता था। लिखा है कि परमेष्ठी प्रजापतिके बडे महलका निर्माण दारुकसे हुआ। उसीकी अनुकृति मानवीय घरोंमें की जाती थी। गृह-निर्माणके आरम्भमें एक बडे मूल स्तम्भ की स्थापना की जाती थी। इनकी संख्या आवश्यकतानुसार एक या अधिक हो सकती थी।

स्कम्भ और उपमितः प्रथाके अनुसार छतको खम्भोंकी तीन पंक्तियोंपर टिकाया जाता था। इन ऊर्ध्व स्तम्भोंपर 'प्रतिमित' नामक बाडे, मँगरे या बल्ले रखे जाते थे। स्तम्भोंकी बीचकी पंक्ति, जो कुछ ऊँची होती थी, के ऊपर रखा हुआ मोटा बल्ला 'परिमित' या 'प्राग्वंश' कहलाता था। यह ठाट आडे-तिरछे बाँसोंसे आच्छादित किया जाता था, जो रस्सियों और अन्य बन्धनोंसे बांधे या कसे जाते थे।

आच्छादनीय छत- छतके लिए बहुतसे आडे-तिरछे साबूत बाँसोंको बिछाया जाता था। उन अनचीरे बाँसोंको अब 'कोरों' कहते हैं। इन बाँसोंके एक सिरेपर मूँजकी 'ठान' नामक भारी रस्सी बांधी जाती है, जिसे आजकल 'जून' कहते हैं। इसके कारण पूरी छतको 'जून' कहा जाता था। शालासूक्तमें सम्भवतः इसी कायबन्ध या कोपनी रस्सीको 'प्राणाः' कहा गया है। इन बाँसोंको आडे-तिरछे दाँव और भी बहुत-सी रस्सियोंसे कसा जाता था, जिन्हें 'वंशनद्धन' कहा जाता था। छत पाटनेकी इस प्रक्रियाके दो अंग हैं। पहले कोरे बाँसोंका एक जाल बिछाना और फिर चीरे हुए बाँसके फट्टोंसे उसे ढकना। यह 'आपाय' कहा जाता था, जिसे अब 'ठाट' या 'ठट्टर' कहते हैं। इसी प्रक्रियासे इस ठाटके ऊपर फूसकी कई तहें बिछाई जाती थीं, जिसे यहाँ 'बर्हण' कहा गया है (अथर्व. ९।३।३)। यह यज्ञवेदीके बर्ह्यास्तरण या बिछावनके समान था। फूसके इस बिछावनके ऊपर पुनः बाँसकी खपच्चियोंकी एक तह लगाई जाती थी। ऊपर और नीचेके बाँसोंकी तहको एक दूसरेके साथ दृढ करनेके लिए गठियाते थे (अथर्व. ९।३।३)। इसे अब गूँथना कहते हैं।

इसी सूक्तमें फूसके घरके सम्बन्धमें दो शब्द आये हैं। पहला तृण है, जिसका अर्थ फूस है। तृण कई प्रकारकी घासको कहते थे; जैसे मुजर (मूँज), शर (सरपत), कुश (डाभ), कास, वीरण (वंश) आदि। दूसरा शब्द 'पलद' है, जो धान और गेहूँके मुट्ठोंका 'पयार' था। इसके मुट्ठे भी छप्पर छानेके काममें बहुत आते हैं (**तृणैरावृता पलदान् वसाना**। अथर्व. ९।३।१७)। छप्परकी एकपलिया या दुपलिया छतोंको खिसकनेसे रोकनेके लिए मँगरे और खम्भोंके साथ मोटी रस्सियोंसे बांधा जाता था, जिन्हें 'परिष्वञ्जल्य' कहते थे। उनकी लपेट और फन्दोंके लिए

'सन्दंश' शब्द था। घरके भीतर छतोंसे झूलते हुए छीके या फन्दोंको 'शिक्य' कहते थे (अन्तःशिक्यानि अथर्व. ९।३।६)। आज भी यह प्रथा है। इन छींकोंमें सुरक्षाके लिए भोजन और दूध दहीके भाण्ड लटका दिये जाते हैं। दुपलिया छतके बीचोबीच लगा हुआ मोटा सँगरा 'परिमित' या 'विषुवत्' कहा गया है। इसीका आगे चलकर 'प्राग्वंश' या 'प्राचीन वंश' नाम पडा।

यह भी कहा है कि वंश या प्राचीन वंशको स्थूणाओंके ऊपर ठहराया जाता था (अथर्व. ३।१२।६)। व्यवहारमें इसका तात्पर्य यही हो सकता है कि दुपलिया छतके बीचका विषुवत् दण्ड और दोनों पार्श्वोंके मोटे बल्ले भी स्थूणा या थूनियोंपर रोके जाते थे। विषुवत्के ऊपर आकाशकी ओर बहुतसे औंधे हण्ड और हंडिया ढक दी जाती थीं। इसका उद्देश्य अक्षसंज्ञक धुआँ निकलनेके छेदों या धूमालोंको ढकना था। इन्हें पालि–साहित्यमें धूमनेत्र कहा गया है। इस समय गाँवोंको बोलीमें इन्हें 'नयन' या 'नयनुवा' कहते हैं। वैदिककालीन बडे घरोंमें भी यह विशेषता थी और इसके लिए 'सहस्राक्ष ओपस' विशेषणका प्रयोग हुआ है, अर्थात् मँगरेके ऊपर हजार नेत्रोंकी उठी हुई पंक्ति। ओपसको ही बौद्ध परिभाषामें 'स्तूपिका' या 'थूपी' कहने लगे। यह चैत्योंकी ढोलाकार छतके ऊपरी भागकी अनिवार्य विशेषता थी। इसकी अनुकृति काष्ठशिल्पसे पाषाणशिल्पमें भी की गई, जैसा महाबलिपुरम्की गजरथाकृति छतोंमें पाया जाता है (ओपसे विततं सहस्राक्षं विषुवति। अथर्व. ९।३।८)। इस अवतरणके चारों शब्द पारिभाषिक हैं और विषुवति या बीचके नलदण्डके ऊपर हजार नेत्रों या छेदोंवाले ओपस या स्तूपिकाओंकी पंक्तिका स्पष्ट वर्णन करते हैं। घरको रमणीय और अलंकृत बनाया जाता था, जिससे वह सबके लिए आकर्षक हो सके। उसके रूपकी कुछ कल्पना इस बातसे होती है कि उसकी उपमा बडी हुई अलंकृत हथिनीसे दी गई है (अथर्व. ९।३।१७ । इसमें सादृश्यकी दो बातें हैं। एक तो घरकी छत हथिनीकी पीठकी भाँति ढोलाकार होती थी और काष्ठशिल्पवाले घरोंमें तो यह विशेषता और स्फुट हो उठी, जैसी कार्लेके चैत्यगृहकी छतमें। दूसरे, हथिनीके शरीरपर अनेक भाँतिकी चित्र–विचित्र भक्तियाँ लिखी जाती थीं। जब भी करेणुकाओंको शोभायात्राके लिए सजाया जाता था, तब इस प्रकारकी गवाक्षयुक्त परम भक्तियोंकी रचना आवश्यक थी। उन्हींके शरीरसे गवाक्षयुक्त शालाकी तुलना की गई है।

घरके सामनेके चौडे प्रांगण या अजिरमें, जिसे प्रथम कक्ष्या भी कहते थे, गायों और घोडोंके रखनेका स्थान होता था (गोभ्योऽश्वेभ्यो नमो यच्छालायां विजायते। अथर्व. ९।३।१३)। अश्वावती गोमती शाला भी बनाई जाती थी (अथर्व. ३।१२।२)। गाय और बैलोंके गोठ, घोडोंकी मन्दुरा और हाथियोंके अवस्थान–मण्डपकी यह व्यवस्था धनियोंके लम्बे–चौडे आवासोंमें होती थी और कालान्तरके राजप्रासादोंकी प्रथम कक्ष्यामें भी यह जारी रही। किन्तु, ये पशु गृहस्वामी या राजाके निजी उपयोगमें आनेवाले होते थे।

घरके सौन्दर्यकी पराकाष्ठा बतानेके लिए उसकी तुलना घरकी बहूसे की गई है (वधूमिव ते शाले। अथर्व. ९।३।२४)। आजतक लोकमें उसीकी उक्ति प्रसिद्ध है। 'धिया पूता घर दिये, ओढी पहरी धन दिये।' वैदिक शालापति या गृहस्वामी अपने घरको देवी समझकर उसकी पूजा–प्रतिष्ठा करता था; क्योंकि उसी स्थानमें उसके समस्त जीवनका विकास होता था। उसे यह सोचकर आनन्द मिलता था कि उसका घर अन्न और दूधके भाण्डारसे भरा है। वहां भूख-प्यासका अवसर नहीं है। वह हास और प्रमोदका स्थान है। जब वह घर बनवाता था, तब सोचता था कि यह शाला गोमती, अश्वावती, घृतवती, पयस्वती, ऊर्जस्वती और सुनृतावती बनकर मुझे महान् सौभाग्यको देनेवाली होगी।

> इहैव ध्रुवा प्रतितिष्ठ शालेऽश्वावती गोमती सुनृतावती। ऊर्जस्वती घृतवती पयस्वत्युच्छ्रयस्व महते सौभगाय॥ (अथर्व. ३।१२।२)

शाला–निर्माणके सम्बन्धमें एक विशेष शब्दकी ओर ध्यान दिलाना आवश्यक है। शालाको बृहच्छन्दाः (अथर्व. ३।१२।३), अर्थात् बृहच्छन्दवाली कहा गया है। गृह निर्माणके बृहच्छन्दसे तात्पर्य उसके ब्रह्मसूत्र और गर्भसूत्रके विस्तारसे है। ब्रह्मसूत्रसे घर या प्रासादका उत्सेध–उदय–समझा जाता है, जिसके लिए सूक्तमें कोशे कोशः समुब्जितः कहा है, अर्थात् एक तल्लेपर दूसरा तल्ला उठाया गया। गर्भसूत्रसे तात्पर्य भूमितलपर ही बनी हुई कक्ष्याओं या मण्डपोंसे है, जिसे सूक्तमें कुलायेऽधिकुलायम्

(९।३।२०) कहा गया है। 'ऊर्ध्वच्छन्द' और 'भूमिच्छन्द, दोनोंका विस्तार 'बृहच्छन्द' पदसे अभीष्ट है।

शतपथके अनुसार घरके दो भाग होते थे। एक पूर्वार्द्ध या सदस्, जो मरदानी बैठक या दीवानखाना था। इसी बैठक या ठाई (शत० स्थायिका) में बडा खम्भा या मूल स्तम्भ खडा किया जाता था, जिसके लिए 'वर्शिष्ठ स्थूणाराज' (शत० ३।५।१।१) नाम दिया है। पूर्व भागमें इधर-उधरके अवान्तर भाग पुरुष-शरीरसे मिलते हुए अंश और श्रोणी कहे जाते थे। इससे ज्ञात होता है कि सामनेके हिस्सेमें आगे-पीछे चार बडे कोठे प्रायः होते थे। घरके पिछले भागमें पत्नीसदन या अन्तःपुर बनाया जाता था। उसे भी पर्याप्त लम्बा-चौडा या कुशादा बनाते थे। जैसे सुन्दर स्त्री वरीयसी और पृथुश्रोणि होती है, वैसे ही यह शालाका उत्तरार्द्ध भाग होता था (अथ यत पश्चाद् वरीयसी भवति। पश्चाद् वरीयसी पृथुश्रोणिवैं योषां प्रशंसन्तिः शत० ५।१।१।९)। शालाकी आगे-पीछेकी नापके लिए पैरोंसे चलकर लम्बाई-चौडाई स्थिर की जाती थी और शंकुओंकी स्थापना की जाती थी। शालाका मुखमण्डप या मुखभाग नासिका थी, जैसे यज्ञभूमिमें उत्तरवेदी होती है। यह नासिका-भाग ही बादमें द्वारप्रकोष्ठ या अलिन्द कहा गया। घरका मुहार किस ओर रखना चाहिए, इस प्रश्नके उत्तरमें कहा गया है कि देवताओंको पूरब-पश्चिमका विन्यास अधिक रुचिकर था और मनुष्योंके घरोंमें उत्तर-दक्षिण का विन्यास अधिक पसन्द किया जाता था, जैसा आजतक है (शत० ३।६।२।३)। मनुष्योंके घरोंमें सदस् या आस्थान मण्डप उदीचीन वंश, अर्थात् उत्तरी मोहारका रखते हुए बनाना अच्छा समझते थे। शतपथब्राह्मणमें लम्बे-चौडे सदः या आस्थान-मण्डपको 'उदर कहा है: 'उदरमेवास्य सदः (शत० ३।६।१।१)। क्योंकि, वह अन्तरिक्ष के समान बीचमें पडता था। इसलिए, उसे आस्थान-मण्डप के समकक्ष उदरस्थानीय कहा गया।

ऊपर लिखे हुए प्रमाणोंको ध्यानमें रखकर वैदिक गृह या प्रासादके सम्बन्धमें सामग्रीके अभावकी शिकायत उचित नहीं है (वैदिक इण्डेक्स)। सच तो यह है कि गृहनिर्माण-कलाके सभी मूलतत्त्व यहां विद्यमान हैं। घरकी नींव बहुत पक्की रखी जाती थी (इहैव ध्रुवा प्रतितिष्ठ शाले अथर्व। ३।१२।२)।

इन प्रमाणोंसे स्पष्ट है कि गृहवास्तुविद्याके आचार्योंने वैदिक युगमें ही उन तत्त्वोंका आविष्कार कर लिया था, जो ऐतिहासिक युगोंके गृहनिर्माण-कलामें पाये जाते हैं; जैसे नींव, कोष्ठ, पक्ख, सभा, अन्तःपुर, द्वार, अलिन्द, उर्ध्वछन्द, अधःछन्द, सूत्रमापन, स्तम्भ-छत आदि।

भारतीय जीवनकी अनेक प्रकारकी सुविधाओंका विधान आचार्यों द्वारा गृहवास्तुमें किया गया था। इससे स्पष्ट है कि आर्यगृहवास्तुका विन्यास स्पष्ट और सरल था। उसके तीन भाग थे--- प्रथम कक्ष्या, जिसमें पशुगोष्ठके लिए भी स्थान था, दूसरा मरदानी बैठक और तीसरा स्त्रियोंका अन्तःपुर। इन्हींकी बहुत-सी विशेषताएं और नाम ऊपर बताये गये हैं। महाभारत रामायण-युगके राजप्रसाद या महल भी इन्हीं तीन कक्ष्याओंके अनुसार बनाये जाते थे। कालान्तर में कक्ष्याओंकी संख्या सात तक हो गई। यह भी उल्लेखनीय है कि हर्ष आदिके समयमें जो संचारी घास-फूस और बाँस-बल्लीके महल बनाये जाते थे, उन्हें भी कायमान कहा गया है। इसीमें राजाके अधिकार या कार्यालय (काय) और राजकीय निवासका भी प्रबन्ध रहता था। ऐसा ही मानना चाहिए कि वैदिक बृहन्तमान या बडे घरोंकी परम्परा उत्तरकालमें भी बनी रही।

विशेष शिल्पोंमें तक्षा, कर्मार, इषुकार, धनुष्कार, कुम्भकार आदिके पेशे महत्त्वपूर्ण थे। संगीत और नृत्यका भी अभ्यास किया जाता था। उनकी गणना भी शिल्पोंमें थी, जैसा जातकों और अष्टाध्यायीमें कहा है। ऋग्वेदमें इन्द्रको 'नृतू' अर्थात् नटराज कहा है (८।२४।१२)। स्त्री-नर्तकी की संज्ञा 'नृतू' थी। गान और वाद्य दोनों प्रकारके संगीतका सामगानके लिए अभ्यास किया जाता था। वीणा एवं उसीका सप्ततन्त्री भेद ज्ञात था (ऋ० १०।३२।४)। शततन्तु या शततन्त्री, अर्थात् सौ तारोंवाली वल्लकी या गन्धर्ववीणाका भी उल्लेख है। इन वाद्योंका आविष्कार सप्त मूलभूत स्वरोंपर किया गया। ये अभी तक भारतीय संगीतमें ही मान्य हैं (वैदिक इण्डेक्स १।२८३)।

शारीरिक सौन्दर्य और भौतिक रूपोंमें उसकी अनुकृतिसे वैदिक युगके कलाविदोंके सौन्दर्यबोधका परिचय प्राप्त होता है। देवी श्री लक्ष्मीके रूपमें उसीकी मूर्त या दृश्य किया गया।

卐 卐 卐

पं. सातवलेकर जीवन–प्रदीप

मूल लेखक— श्री पु. पां. गोखले] [अनुवादक— श्री श्रुतिशील शर्मा

[गताङ्कसे आगे]

" इससे पहले मेरे पिताजीकी शादी हुई और उनके पहला लडका भी हुआ। उसी प्रसूतिके दौरानमें उनकी पत्नीका देहान्त हो गया। ५ वर्षके बाद लडका भी चल बसा। इसके बाद पिताजीका दूसरा विवाह हुआ। लडकी बालावलके उपाध्योंकी थी। इससे भी ४–५ बच्चे हुए, पर सभी मर गए। बच्चे दो–दो वर्षके होकर मर जाते थे। इसलिए मेरे जन्मसे पहले नरसोबावाडीके दत्तात्रेयके सामने मेरे माता पिताने यह मनौती मनाई कि— " यदि यह लडका जिन्दा रहा तो इसका उपनयन संस्कार तेरे ही चरणोंमें आकर करेंगे। " मेरी जन्मपत्रिका मेरे जन्मके बाद १२ वें दिन बनवाकर पढवाई, उसमें १६ वें वर्ष मेरी अपमृत्यु लिखी हुई थी। यह सुनकर मेरे पिताजीको बहुत गुस्सा आया और उन्होंने पत्रिका ली और फाड डाली। इस कारण मेरी जन्मपत्रिका अब मेरे पास नहीं है। पिताजी बोले— " यह लडका १६ वें वर्ष मर जाएगा, यह बहुत दुःखदायी है। भगवान्‌ने हमारे भाग्यमें पुत्रसुख लिखा ही नहीं है। " मेरा जन्म कोलगांवमें ही हुआ था।"

" मैं बचपनमें बहुत अशक्त था और मेरी इस अशक्ति और बीमारीके कारण घरके लोगोंको बहुत कष्ट होते थे। बचपनमें मैं बीमार पडता था और मेरे बिस्तरके चारों ओर घरके सभी सदस्य चिन्तित होकर बैठे रहते थे। यह बात मुझे आज भी याद है। ऐसा एक भी सप्ताह नहीं बीतता था कि जिसमें मैं बीमार न पडता होऊं। अनेक तरहकी ज्वरादिक पीडायें मुझे सताती थीं। "

" मैं चार वर्षका रहा होऊंगा। घरमें घूमने फिरने लगा था। इसी बीच कृष्णभट हळबे बीमार पड गए और २५ दिनकी बीमारीके बाद वे मर गए। मरते समय उनका देहावसान हमारे पिताजीकी गोदमें ही हुआ। क्योंकि उनके दत्तकपुत्र व्यंकटेशभट हळबे महाडमें जाकर पौरोहित्य करते थे। दत्तकपुत्रका अपने पिताके साथ कभी नहीं पटा। अपने पिताका पहलेका व्यवहार इस दत्तकपुत्रको कभी भी पसंद नहीं आया। इसलिए यह दत्तकपुत्र अपने परिवारसहित महाडमें रहता था और वहां उसने पौरोहित्यका धन्धा करके बहुतसी सम्पत्ति प्राप्त कर ली थी और वह वहां आनन्दपूर्वक अपना संसार चलाते थे। "

" अपने पिताके देहावसानका समाचार जाननेपर वे १५–२० दिनके बाद पहुंचे। इस कारण कृष्णभट्टकी उत्तरक्रिया हमारे पिताजीने ३०० रु. कर्ज लेकर की, क्योंकि उनकी (कृष्णभट्टकी) स्त्रीने एक भी पैसा नहीं दिया था। दत्तकपुत्र जब गांव पहुंचा और उसने अपनी सौतेली मांका व्यवहार सुना, तब उसने अपनी मांको बहुत फटकारा। वह ४–५ दिन रहकर वापस महाड चले गए। मां और दत्तकपुत्रका कभी पटा नहीं। "

" इधर कृष्णभट्टकी स्त्रीने घरमें ताला लगा दिया और उसने सभी सम्पत्ति अपनी बतानी शुरू कर दी। और पिताजीसे कह दिया कि इसमेंसे तुम्हारा कुछ भी नहीं है। उसकी तरहसे उसके भाई और शंभुपंत नामके वकील लडनेवाले थे, इधर मेरे पिताजीका भी पक्ष लेनेवाले २–३ सज्जन थे। बादमें चलकर आपसमें समझौता हो गया और १३०० रु. उस स्त्रीको देनेपर आधा घर, नारियल और आमका बाग आधे बर्तन हमारे अधिकारमें आ गए। ये १३०० रु. पिताजीने कर्ज लेकर उस स्त्रीको दिए। पर यह रकम उसके पास भी नहीं रही, सबकी सब रकम उसके भाईयोंने हडप ली और उस स्त्रीके पास एक भी पैसा नहीं रहा। "

" वकीलकी सलाह पर उस स्त्रीने अपने भाईयोंपर दावा दायर कर दिया। एक वर्षमें वकीलने भाईयोंसे यह रकम वसूल कर ली, पर उसे स्त्रीको न देकर स्वयं ही हडप लिया।

इस प्रकार दो वर्षोंके बाद उस स्त्रीके पास आधे घर और जमीनको छोडकर कुछ भी नहीं बचा। जेवरात भाई हडप गए और पैसे वकील निगल गया। जमीनकी पैदावार मुकदमा लडनेमें स्वाहा होती गई। पतिने ऐश्वर्य प्राप्त तो किया, पर पत्नी उस ऐश्वर्यका उपभोग न कर सकी।"

"दो वर्षोंके बाद व्यंकटेशभट हळबे आये। वे और हमारे पिताजी बचपनसे ही एक आत्मा और दो शरीर थे। उन्हें अपने पिताकी सारी कारवाइयां मालूम थीं, और उन्हें वे सब बिल्कुल पसन्द नहीं थीं। इसीलिए वे अब अपने पिताके पापप्रक्षालनके लिए आए थे। आकर उन्होंने वकीलोंकी सलाह ली और बाकी बची हुई आधी जमीन भी उन्होंने हमारे पिताजीको बिनाशर्त वापिस कर दी और पिताजी द्वारा कर्ज लेकर दी गई रकम भी उन्होंने पिताजीको व्याजसहित लौटा दी।"

"सचमुच इन व्यंकटेशभट्टकी यह उदारता अमर्यादित थी। आधी जमीन यद्यपि उन्होंने अपने लिए रख ली, पर मित्रकी दुर्गति न हो, इसलिए बिना किसी शर्तके आधी जमीन वापस करना और कर्ज भी दे देना, यही क्या उनकी कम उदारता है? "यदि मित्र हो तो ऐसा ही हो।"

"पिताजीके द्वारा दिए गए बख्शीशपत्र तथा वापिस दी गई जमीन तथा रकमके सभी कागजात मैंने पढकर देखे हैं। तथा जमीनके जाने एवं उसके पुनः वापिस मिलनेका सब व्यवहार मुझे ज्ञात है। इसीलिए मैं व्यंकटेशभट्टको देवमनुष्य समझता हूँ।"

"इसके बहुत वर्षोंके बाद व्यंकटेश भट्टकी सौतेली माता हमारे ही घर अतिसारसे पीडित होकर मर गई और उसकी उत्तरक्रिया भी हमारे पिताजीको ही करनी पडी, क्योंकि उस समय उसका दत्तकपुत्र वहां मौजूद न था।"

"इस परिस्थितिमें मैं बडा होता गया। ये सब व्यवहार उस समय मेरी समझमें नहीं आते थे, पर आगे चलकर मेरे ही सामने घर और जमीनके बंटने और सभी कागजात देखनेसे सब बातें मेरी समझमें आ गई।"

० ० ०

४ जन्मगाथा

जिस प्रकार पर्वतपर कहीं चट्टान, कहीं घाटी, कहीं कंटीली झाडियां, कहीं झरने, कहीं हरियाली और कहीं अपनी ओर आकर्षित करनेवाले छायादार वृक्षोंके कुंज होते हैं, कुछ इसी प्रकारकी उपमा मनुष्यके जीवनके लिए भी दी जा सकती है। मनुष्य जीवनमें भी कभी दुःख है, कभी सुख है, कभी उन्नति है कभी अवनति है, कभी यह जीवन आकर्षक लगता है, तो कभी बोझ बन जाता है। तथापि किसी स्त्रीको मातृपद तो प्राप्त हो, पर परमात्मासे प्राप्त वह कली खिलने भी न पाये और समयसे पूर्व ही सूख जाए, तो उस समय उस स्त्रीपर जो गुजरती है और उस समय उसकी जो मनस्थिति होती है, उसका वर्णन करना सर्वथा असंभव है। उसका थोडा बहुत वर्णन इन्हीं शब्दोंमें किया जा सकता है—

अबला हाय तेरी यही कहानी।
आंचलमें है दूध और आंखोंमें पानी।

ऐसी ही कुछ अवस्था सौ. लक्ष्मीबाई सातवलेकरकी भी थी। उनकी चार सन्तानें हुईं, पर दुर्दैवके झपट्टा मारनेके कारण चारों ही सन्तानें अधखिलीं ही रह गईं। ऐसे आपत्ति एवं निराशाके कालमें यदि सौ. लक्ष्मीबाई सातवलेकरने नृसिंहवाडीके दत्तात्रेयकी शरण ली और वहां जाकर मनौती मानी तो इसमें आश्चर्य क्या?

श्री लक्ष्मीबाईकी मनौतीके फलस्वरूप भाद्रपद कृष्ण ६, शक संवत् १७८९ को उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम 'श्रीपाद' रखा गया। उसी दिन उसकी जन्मपत्रिका देखकर एक ज्योतिषीने भविष्यवाणी की कि यह लडका १६ वें वर्ष नहीं तो १८ वें वर्ष तो अवश्य ही प्रभुको प्यारा हो जाएगा। यह सुनकर उस अपत्यके सम्बन्धियोंके मनोंमें एक प्रकारकी भीतिका निर्माण हो जाना स्वाभाविक ही है। पर वह लडका उस निश्चितकाल मर्यादाको पार करके स्वावलम्बी हो गया और अपने कर्तृत्वसे सारी मानवताका हित करने लगा और वही लडका आज पंडित श्रीपाद दामोदर सातवलेकरके नामसे प्रसिद्ध होकर शताब्दीमें प्रवेश कर गया है। इन सब स्थितियोंपर विचार करनेपर यह ज्ञात होता है कि अपनी इच्छाशक्ति और तपस्याके जोरपर—

भाग्यको बदलनेमें समर्थ मनुष्य है।

इस भविष्यकी सत्यतासत्यता परखनेके लिए पंडितजीकी जन्मपत्रिकाका आधार चाहिए, जो आज अस्तित्वमें नहीं है। क्योंकि १६ वें या १८ वें वर्षमें अपने लडकेकी मृत्युकी भविष्यवाणी सुनकर पंडितजीके पिताजीने रोषमें आकर उसी

समय वह पत्रिका फाड दी थी। पर जब मृत्युकी निश्चित काल मर्यादा निकल गई, तब स्वयं दमोदर भट्टने अथवा हळबे जैसे किसी हितचिन्तकने अपनी स्मृतिके आधारपर अथवा किसीने पंडितजीका चेहरा और हाथकी रेखा देखकर पंडितजीकी जन्मपत्रिका बनाई रही होगी, जो किसी पुरानी पत्रिकामें पंडितजीके ज्येष्ठ पुत्र श्री वसन्तरावको प्राप्त हुई। वह पत्रिका इस प्रकार है—

"ग्रहदर्शन, शक १७८९ श्री सुखनामसंवत्सरे भाद्रपद कृष्ण ६ भृगुवासरे सूर्योदयात् गतघटि १५ पल २५।

जन्मलग्न कुंडली

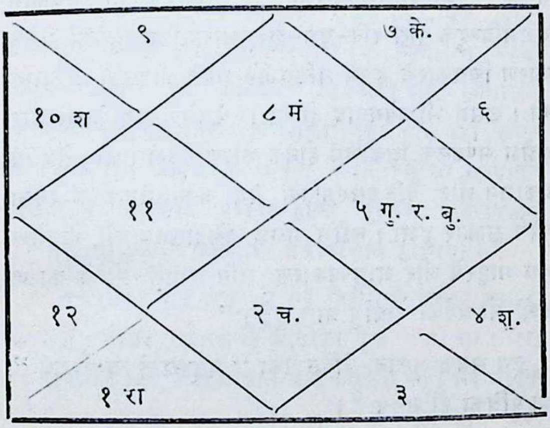

पर जब १७८९ शक संवतका पंचांग निकालकर देखा गया तो उसके साथ यह पत्रिका मिली नहीं। इस पत्रिकामें भाद्रपद कृष्ण ६ का दिन भृगुवार (शुक्रवार) बताया है, पर पंचांगमें वह दिन गुरुवार है, इसी प्रकार दोनोंके संवत्सरके नाम भी भिन्न भिन्न हैं। इसलिए श्री वसन्तरावके द्वारा प्राप्त जन्मपत्रिका विश्वसनीय नहीं मानी जा सकती। अतः ज्योतिर्विद् उद्धव विष्णु रुईकर और उनके पुत्र भालचंद्र तथा पंचांग रचयिता श्री विसापुरकरने शक-तिथि और समयके आधारपर पंडितजीकी एक नवीन पत्रिका तैय्यार की। वह पत्रिका नीचे दी है। इसी प्रकार पूनाके ग्रहनक्षत्र कलादेश संशोधन संस्थाके श्री श्री. के. केळकरके द्वारा तैय्यार की गई कुंडली भी हम देते हैं। मनुष्य इन कुण्डलियोंके सहारे बैठा न रहे। पर इसके साथ यह भी सच है कि इन ग्रहनक्षत्रोंका प्रभाव मनुष्यके जीवनपर पडता अवश्य है। श्री केळकर द्वारा तैय्यार की गई कुण्डली इस प्रकार है—

जन्म कुंडली

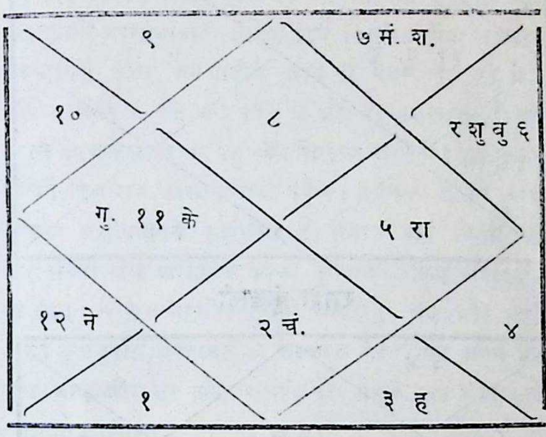

नवमांश कुंडली

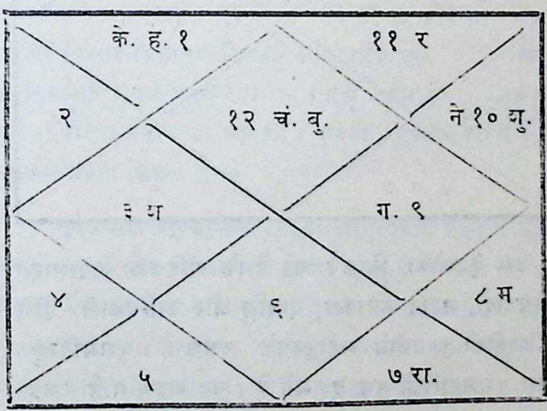

इसीके साथ श्री रुईकरके द्वारा तैय्यार की गई पत्रिका भी देखने योग्य है।

सूर्योदयात् घटी १५ पल २५॥ जन्मसमये-कृत्तिकानक्षत्र। चतुर्थ चरण। वृषभ राशि। अन्त्य नाडी। मेषयोनि। राक्षसगण। वैश्यवर्ण। नाक्षत्रनाम-एकेशशर्मा। व्यावहारिक नाम- श्री श्रीपादराव। घातवार-शनिवार।

*

लग्न कुंडली

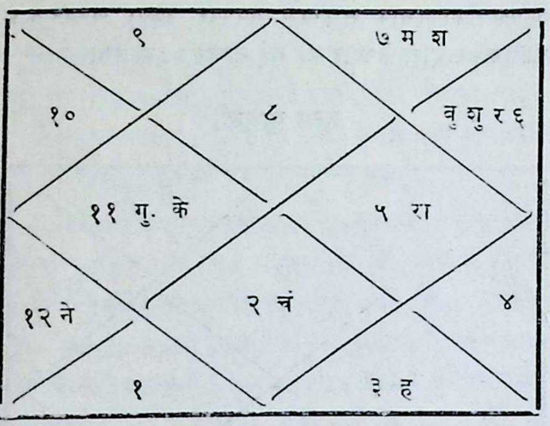

राशि कुंडली

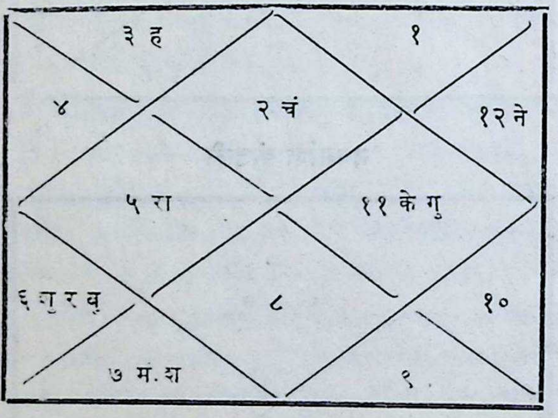

इस कुंडलीका निष्कर्ष यह है कि पंडितजी भाषाशास्त्री ध्येयवादी, महान् कलाकार, दीर्घायु और क्रान्तिकारी होंगे पंडितजीकी कुण्डलीमें महापुरुषके लक्षण हैं। दशमबिन्दुके पास दशमराशिमें बुध दशममें है। यह भद्रयोग है. भद्रयोगवाला मनुष्य दीर्घायु, कुशाग्रबुद्धिवाला और वक्ता होता है। उनकी कुण्डलीमें गुरु और कुंभ शास्त्रीयराशिमें हैं। गुरु पंचमेश है। गुरु और मंगल नवमांशमें बलवान् और दशवर्गमें क्रमशः गोपुर और सिंहासनयोगमें हैं। पंचमेश गुरुका बलवान् होना पंडितजीके बुद्धिवादी होनेका द्योतक है। "पुष्कर" नामक शुभयोग उनकी सुशीलताका निदर्शक है। दशमस्थानमें राहु जैसा ग्रह सिंहराशिमें है, जो उनका कर्तृत्व दिखानेवाला और यशदायक है। व्ययस्थानमें शनिमंगल पापग्रह हैं, जो बंधनयोग दिखाते हैं। भाग्याधिपति चन्द्र सप्तम स्थानमें बलवान् है। यह 'चन्द्रचूड' नामक शुभयोग उदार स्वभावका परिचायक है, पारिवारिक सुखका भी वह सूचक है।

पंडितजीकी कुण्डलीका रहस्य गुरु, बुध और शुक्र इन ग्रहोंमें है। लग्नेश मंगल सिंहासनयोगमें और तुल चर राशिमें है। ये सभी योग दीर्घायु देनेवाले हैं। लग्नाधिपति व्ययस्थानमें स्थूलराशिमें शनियुक्त होनेके कारण यह पंडितजीके दृढनिश्चयता, कष्ट सहनेकी शक्ति, निस्पृह और मितव्ययी स्वभावका द्योतक है। एकादश स्थानमें रहनेवाली रवि-बुध-शुक्रकी युति धार्मिक विषयमें संशोधनका कार्य करानेवाली है।

श्री केळकरने १८ सितम्बर १९६६ को स्पष्ट कह दिया है कि "श्री दा. सातवलेकर" के वृश्चिकलग्नकी पत्रिकामें दशमबिन्दुके पास रवि-बुध-शुक्र आध्यात्मिक युतिमें होनेके कारण चित्रकारके रूपमें पंडितजीने अपने जीवनकी शुरुआत की। उसमें भी ध्येयवाद ही था। पंचमेश गुरु कुंभमें और लग्नेश मण्डलके त्रिकोणमें होनेके कारण वेदसंशोधन, वेदग्रंथ प्रकाशन और वैदिकसंस्कृतिके ग्रंथ प्रकाशनरूप जीवनका ध्येय साकार हुआ। लग्नेश मंगल सिंहासनयोगमें, अष्टमेश बुध गोपुरमें और आयुष्यकारक शनि तुलामें होनेके कारण उन्हें सौ वर्षकी दीर्घायु प्राप्त हुई।"

इन सबके अलावा पंडितजीका "मदायत्तं च पौरुषं" की पत्रिका ही मुख्य है।

५ बाल्य-जीवन

बार बार आती है मुझको
मधुर याद बचपन मेरी
गया ले गया तू जीवनकी
सबसे मस्त खुशी मेरी

(सुभद्राकुमारी चौहान)

पंडितजीका जन्म एक सात्विक और वैदिक घरानेमें हुआ। मनौतीसे पैदा हुआ यह लडका शुरुआतमें बहुत ही कमजोर था। इसकारण सातवलेकर परिवार इसके लिए हरदम बैचेन सा रहता था। उपनयन होनेके बाद पंडितजीने सावंतवाडी जाकर वहां मठेवाडामें मामा पेंढारकरसे शिक्षा लेनेकी शुरुआत की। इससे ज्यादा और कुछ जानकारी यहां इस विषयमें नहीं मिलती। पर अपने बाल्यजीवनके विषयमें स्वयं पंडित-

जीने जो कुछ लिखा, वह यहां देखने योग्य है। पंडितजी लिखते हैं—

" मेरे बादमें पैदा होनेवाले मेरे भाई मनौतीके बिना ही जीवित रहे। मेरी छोटी बहिन जन्मसे ही शरीरसे सशक्त और मोटी थी। चौथे वर्षमें होलीके अवसर पर बनाकर आये हुए स्वांगको घरकी एक स्त्रीने दिखलाकर मेरी बहिनको डरा दिया। इस कारण वह डर कर बेहोश हो गई, फिर वह कभी होशमें नहीं आई। हर पांच मिनटमें उसका सारा शरीर थरथर कांपता था। इसी डरसे ग्रस्त होकर वह २४ घंटेके अन्दर ही मर गई। यह मृत्यु मेरे सामने हुई। यह हृदयद्रावक दृश्य आज भी मेरी नजरोंके सामने है।"

" इसके बाद मेरी माताके दो लडके हुए। एक कृष्णा उर्फ सखाराम व दूसरा सीताराम। चि. सखाराम घरकी व्यवस्था देखनेके लिए गांवमें ही रह गया और सीताराम पूनामें बी ए तक पढकर अमेरिका गया और वहां अपने परिश्रमसे पैसा प्राप्त करके अर्थात् आजीविकाका सम्पादन करते हुए साइन्समें डॉक्टर होकर दक्षिण हैदराबादमें " विवेक-वार्धिनी " कॉलेजका प्रधानाचार्य हो गया।"

' बचपनकी यादें अब भी मेरे दिमागमें चक्कर लगाती रहती हैं। तीसरे वर्षतक मैं माताका दूध पीता था। मेरा दूध छुडानेके लिए मेरी माताने बडी कोशिशें कीं। मेरे बादके भाईयोंकी उमरमें ५-५ वर्षका अन्तर है। मेरे बाद मेरी माताके जल्दी जल्दी बच्चे होते थे, ऐसा लोग कहते हैं।"

" चौथे वर्ष मैंने अक्षराभ्यास शुरु किया। लकडीकी तख्ती पर धूल फैलाकर उस पर लिखना पडता था। इस-लिए उसे ' धूलाक्षर ' कहते थे। स्कूलोंमें भी यही धूलकी तख्तियां थीं।"

" पांचवें वर्ष मैं अच्छी तरह पढने लगा। दिनमें और शामको मेरे पिताजी अनेक स्तोत्र और पहाडे याद कराते थे। आधा, पौना, सवाया, डेढ, ढैय्या आदि सभी पहाडे मुझे अच्छी तरह याद हो गए थे। उसी तरह पूजाके मंत्र, फलित ज्योतिषके और ग्रामपौरोहित्यके लिए उपयोगी पडने-वाले पंचागनिरीक्षण भी मैंने सीख लिए थे। रामरक्षा और महिम्न आदि अनेक पौराणिक स्तोत्र भी मुझे याद हो गए थे। महिम्नके द्वारा देवाभिषेक करनेपर उन दिनों ३-४ आने मिलते थे। स्तोत्र और मंत्रादिकोंका अध्ययन उन दिनों आजीविका प्राप्त करनेका एक साधन था।"

नरसोबावाडीके सामने की गई मनौतीके अनुसार श्रीपाद अशक्त होने पर भी सात वर्ष तक जीवित रहे अतः आठवें वर्ष उनका उपनयन नरसोबावाडीमें जाकर करनेकी उनके पिता दामोदरपंतकी इच्छाका होना स्वाभाविक ही था। तदनुसार श्रीपाद, उसकी माता, घरके दो बडे आदमी, ये सभी एक बैलगाडीमें नरसोबावाडी जानेके लिए निकले। पिताजी लाल-टेन हाथमें लेकर बैलगाडीके साथ ही पैदल चल रहे थे। दररोज सबेरे ८ बजे चल पडते थे और रातको करीब नौ बजे किसी उपयुक्तस्थान पर पहुंचकर आराम करते थे। इस प्रकार पांचवें दिन सब नरसोबावाडी पहुंचे। उपनयन होनेके बाद श्रीपाद यज्ञोपवीतसे सुशोभित हो गया। अब दिनमें दो बार संध्या और अग्निहोत्र करना श्रीपादके लिए आवश्यक हो गया। ये सब नरसोबावाडीसे कोल्हापुर गए और वहां अपने कुलदेवता अम्बाबाईका चरणरज लेकर फिर अपने घर लौट आए और घर लौट आनेके दो महीने बाद श्रीपादका समावर्तन हुआ।

इस समावर्तनने श्रीपादकी जिम्मेदारियां बढा दीं। अब श्रीपादराव अपने बर्तन एवं कपडे स्वयं मांजते और धोते थे। अपना बिस्तर बिछाना और समेटना आदि छोटे मोटे काम वे नियमित रूपसे करने लग गए। इस प्रकार उनकी शिक्षा अपना रास्ता बनाये जा रही थी। अपनी शिक्षाके बारेमें पं. सातवलेकरजी लिखते हैं—

" पूर्वजन्मके संस्कारोंकी तरह आनुवंशिक संस्कार भी बच्चोंके बनने और बिगाडनेमें कारण होते हैं। उन दिनों ब्राह्मण वेदपाठी होते थे। ब्राह्मण कुलमें पांचवें वर्ष लगते ही लडकेको सबेरे नहाकर १२ सूर्यनमस्कार (१०-१२-आसनोंका एक व्यायाम) करना पडता था। उसी तरह मुझे भी पांचवें वर्षसे सूर्यनमस्कार शुरु करना पडा। सूर्य-नमस्कार दस आसनोंका एक समूह है। पर इस समय व्यायामके महत्वको समझनेकी जितनी अकल मुझमें नहीं थी। तथापि सूर्यकी उपासना समझकर मैंने सूर्यनमस्कार करना शुरु किया। कुछ नौजवान ऐसे भी थे, जो रोज १२०० सूर्यनमस्कार करते थे। उनका शरीर एकदम वज्र समान था। कोई सौ, कोई पचास सूर्यनमस्कार करनेवाले तरुण भी मेरे बालपनमें थे। पर १२ से ज्यादा सूर्य-नमस्कारका व्यायाम करके अपने शरीरको सुधारनेकी तरफ मेरी प्रवृत्ति नहीं हुई।"

" आठवें वर्ष में सावंतवाडीके एक मराठी स्कूलमें जाने लगा। मेरी योग्यता देखकर मेरे अध्यापकने मुझे दूसरी श्रेणीमें बैठनेकी अनुमति दे दी। तबसे लेकर मराठीके ६ ठी श्रेणी तक अपनी कक्षामें मैं हमेशा प्रथम या द्वितीय नम्बरपर आता रहा।"

" इस वक्त मेरी उमर आठ वर्षकी थी। उस समय २०-२० वर्षके लडके दूसरी तीसरी कक्षामें पढने आते थे। उनमें एक शेख मुहम्मद नामका एक काजीका लडका था। जिसकी लम्बी लम्बी दाढी और मूंछें थीं। वह दूसरी कक्षा में मेरे साथ पढता था। उसकी उमर २५ के करीब तो रही ही होगी। वह अरबी भाषामें कुरान पढता था और कुरान पढनेके साथ ही रोता भी जाता था। उस कुरानमें उसके धर्मसंचालकोंके पराभव एवं कत्ल होनेका वर्णन था, जिसे पढकर वह रोया करता था।"

" चौथी श्रेणीमें विठोबा पाटणकर नामक एक अध्यापक थे। वे जब विद्यार्थियोंको छडी मारते थे, तब विद्यार्थी उन की छडी पकड लिया करते थे। जब वे अध्यापक उसे छुडा नहीं पाते, तो वे " छोड दे रे बाबा, छोड दे " कहकर अनुनय किया करते थे और तब वे विद्यार्थी उस छडीको छोडते थे। उस समय तो छठी कक्षामें पढनेवाले लडकोंके लडके " अ और ब " कक्षामें सीखते थे, (अर्थात् पिता छठीमें पढता था और लडका " अ या ब " में)।"

" चौदहवें वर्षमें मैं मराठीकी छठवीं पास हो गया, और मराठी स्कूलसे बिदा ले ली। इसके बाद अंग्रेजी स्कूल में जानेकी इच्छा हुई। उस समय सावंतवाडी हाईस्कूलके प्रधानाचार्य श्री पाणन्दीकर थे। वे बहुत प्रेमालु, शान्त और विद्यार्थियोंकी हर तरहसे सहायता करनेवाले थे। कई विद्यार्थियोंकी फीस तो वे अपने वेतनमेंसे निकालकर देते थे और कइयोंको वे पुस्तकें भी लाकर देते थे। ये ही आगे चलकर डॉ. रामकृष्ण गोपाल भांडारकरके दामाद बने। इस वक्त अंग्रेजी स्कूलकी फीस ८ आने प्रतिमास थी। मेरे पिताजीने स्पष्ट कह दिया था कि- " हमें अंग्रेजी शिक्षाकी आवश्यकता नहीं है। हम तुम्हारे लिए इतनी फीस नहीं दे सकते।" मैं अंग्रेजी शिक्षासे शिक्षित होकर बिगड न जाऊं, यही उनकी इच्छा थी।"

" मैं श्री पाणंदीकरसे मिला पर उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि तुम्हारी फीस माफ नहीं हो सकती। इस कारण अंग्रेजी स्कूलमें मैं केवल ६ दिन ही रह पाया। और मेरी अंग्रेजी शिक्षा इसप्रकार ६ दिनोंमें ही पूरी हो गई। इस कारण मुझे गुस्सा आया और घर हीमें अंग्रेजी पढनेका मैंने अपने मनमें निश्चय कर लिया। और मित्रोंके पाससे १ से ४ तक रॉयल रीडर्स लाकर घर ही में अंग्रेजी पढनी शुरु की। उन दिनों सावंतवाडीमें श्री बलवन्तराय लुकतुके नाम के एक सज्जन रहते थे। उन्होंने मुझे हावर्डकी पहिली पुस्तक सिखाई। वह भी इस रीतिसे सिखाया कि उतनी जानकारी से ही मैं अपने आप रॉयल रीडर पढने लग गया। कुछ न आता तो दूसरेसे पूछ लेता था। इसप्रकार एक वर्षमें मैंने चार रीडर्स खतम कर लिए और कामके लायक अंग्रेजी मुझे आने लगी। उसके बाद भी अंग्रेजीका स्वयं पठन मैंने चालू ही रखा। साधारण पत्र व्यवहार करने और किसी भी विषयपर अंग्रेजी पुस्तक समझनेकी जितनी अंग्रेजी मैंने घर ही बैठे २-३ वर्षोंमें सीख ली। पर अंग्रेजीमें भाषण मैं नहीं दे सकता था, क्योंकि इतनी अंग्रेजी मुझे आती न थी।"

" घरपर ही कुछ ऋग्वैदिकसूक्त और पौरोहित्यके काममें आनेवाले कुछ प्रयोग सीख लिए थे। उन दिनों हाईस्कूलमें श्री चिन्तामणि केलकर नामक एक संस्कृत शिक्षक थे। उनके पास रहकर मैंने कौमुदी, मनोरमा शेखर आदि संस्कृत-व्याकरणके ग्रंथ पढे। इसी समय मैंने एक " संस्कृत व्याख्यानमण्डल " की स्थापना की। उसकी स्थापनाका उद्देश्य यही था कि सप्ताहमें एक दिन संस्कृतमें व्याख्यान हों और संस्कृतमें वादविवाद भी हों। हमारे उस मण्डलमें करीब ७-८ लोग सदस्य थे। वे सभी सदस्य संस्कृतमें व्याख्यान देते थे।"

" उसी दरम्यान सावंतवाडीमें चित्रकलाका एक स्कूल खुला और मैं वहां जाकर चित्रकला सीखने लगा। प्रथम दो परीक्षायें वहींसे पास कीं और सन् १८९० में मैं बम्बईके आर्टस्कूलमें दाखिल हो गया।"

श्री पं. सातवलेकरजीके पिता श्री दामोदरपंत भी चित्रकारीमें कुशल थे, वही मानों उत्तराधिकारके रूपमें श्रीपादके पास भी आया। इसीलिए सन् १८८७ में सावंतवाडीमें जब औद्योगिक स्कूल खुला, तब श्रीपादके कलानैपुण्यमें भी

बहार आ गई और उनकी यह कला और भी निखरती चली गई।

कोलगांव और सावंतवाडीके निवासकालमें श्री पंडितजीकी बुद्धि अपनी छटा दिखाने लग गई थी। एक तरफ वेदाभ्यासी तो "अलक्ष्मीर्मे नश्यतु" कहकर दारिद्र्यको दूर भगानेकी बात कहता है, तो दूसरी तरफ द्रोणाचार्य "ब्राह्मणत्व और दारिद्र्य" को पर्यायवाची शब्द मानते हैं। अतः इन दोनों सिद्धान्तोंका समन्वय हो तो कैसे हो? सावंतवाडीमें अपने सम्बन्धी मामा पेंढारकरके पास रहते हुए इन दोनों सिद्धांतोंके समन्वय करनेके विषयमें श्री पंडितजी हमेशा उनसे जिज्ञासा किया करते थे।

उन दिनों सावंतवाडीमें एक कमरेका किराया एक रुपया वार्षिक था, अतः ड्राइंगमें नैपुण्य प्राप्त करनेकी इच्छासे श्रीपाद कोलगांव न जाकर वहीं सावंतवाडीमें ही रहकर अपना शौक पूरा करता था। यदि कभी घर जाना भी होता था तो गणेशोत्सव और होलीके अवसरपर दो चार दिनोंके लिए हो आता था। अपने गांवमें भी सावंतवाडीकी तरहही अमराईमें या पडौसके बागमें जाकर वहांके निसर्गरम्य चित्रोंको अङ्कित करना ही श्रीपादका मुख्य काम रहता था। उस समय यह चित्रकार अपने चित्रलेखनमें इस प्रकार समाधिस्थ हो जाता था कि खाने पीनेकी भी सुध भूल जाता था। माताके बार बार पुकारने पर भी यह कलाकार तभी उठता था, जब इसका चित्र पूरा हो जाता था।

मराठी ६ वीं उत्तीर्ण होनेके बादसे ही श्रीपादके १६ वें वर्षकी कल्पना मातापिताके आंखोंके आगे नाच उठती थी। कुण्डलीमें लिखे गए श्रीपादकी अकालमृत्युकी कल्पना ही उन दोनोंके लिए महान् चिन्ताका कारण बन गई थी। तो भी उन दोनोंका उस सर्वनियन्तापर भरपूर विश्वास था। श्रीपादके जन्मके पूर्व दत्तात्रेय भगवान्की मनौती मनाई थी और श्रीपादके आठवें वर्ष नरसोबावाडी जाकर भगवान्के चरणोंमें नतमस्तक होकर दोनोंने श्रीपादके लम्बी उमरकी प्रार्थना की थी। ये थीं कुछ बातें जो ऐसे संकटके अवसरपर उन्हें ढांढस बंधाया करती थीं। श्रीपादकी बुद्धिमत्ता, अपनी श्रेणीमें प्रथम आना, सावंतवाडीमें "संस्कृतवाग्विवर्धिनी" नामक संस्कृत मंडलकी स्थापना ये सब कुछ ऐसी बातें थीं, जो मातापिताको पूरा पूरा विश्वास दिलाती थीं कि यह पुत्र वस्तुतः भगवान्का ही अमूल्य प्रसाद है। प्रसंगवश सावंतवाडीमें संकेश्वरमठके शंकराचार्यकी मौजूदगीमें "धर्म" विषयपर श्रीपादके मुखश्रीसे संस्कृतमें अप्रतिहत वाग्धारा प्रवाहित होते देखकर एवं शंकराचार्यके द्वारा प्रशंसा प्राप्त करते देखकर उसके पिताके हृदयमें हर्षका सागर किस प्रकार उमड पडा होगा, इसके बारेमें तो—

न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा
स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते

(उसके आनन्दका वर्णन वाणी नहीं कर सकती, उसका अनुभव तो स्वयं हृदय ही कर सकता है) यही कुछ कहा जा सकता है। उस समय श्रीपादकी उमर १७ वर्षकी थी। इसके बाद सभी सम्बन्धियोंने निश्चयपूर्वक समझ लिया कि अब श्रीपादका मृत्युयोग टल गया है। अब दामोदर भट्टका व्यवहार श्रीपादके साथ—

"प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचेरत्"

(सोलहवें वर्षके प्राप्त हो जानेपर पिता पुत्रसे मित्रके समान व्यवहार करे) इस उक्तिके अनुसार मित्रवत् ही हो गया था। अब श्रीपाद भी घरके कामोंमें अपने पिताका हाथ बंटाने लगे। अब रातको पूजापाठ कराने यदि कहीं जाना होता तो वह काम अब श्रीपाद ही कर दिया करते थे।

यद्यपि गांवमें रहते हुए श्रीपाद अपने पिताकी भरपूर सहायता कर सकते थे, पर वहां रहकर उनके गुणोंके विकसित होनेका अवसर नहीं मिल सकता था। और उन गुणोंको विकसित करनेके लिए श्रीपादका सावंतवाडीसे बाहर जाना आवश्यक था। यह महत्त्वाकांक्षी और बुद्धिमान् तरुण अपनी कला एवं गुणोंके विकासके लिए अपनी आयुके बीसवें वर्षमें इस पौरोहित्यके कर्मसे छूटकर बाहर विहार करना चाहता था। पौरोहित्यके आधार पर उदर निर्वाह करनेकी पद्धति उन दिनों भी शिथिल होती जा रही थी। अतः श्रीपादने यह स्पष्ट जान लिया कि उदर निर्वाहके लिए चित्रकलाके अलावा और कोई ऐसा प्रतिष्ठित व्यवसाय नहीं है कि जिसका सहारा लिया जा सके। इसके लिए श्रीपादने बम्बई जैसा योग्य नगर चुना। उस समय कोंकण प्रदेशवासी शिक्षा और व्यवसायके लिए अधिकांशतः बम्बईकी ओर ही दौडते थे। इसलिए श्रीपाद भी बम्बईकी तरफ ही मुड गए। १८९० सन्में वे बम्बई चले गए। अपने कला कौशल्यके बारेमें पंडितजी लिखते हैं—

"फोटो परसे मैं बडे बडे चित्र अपने हाथोंसे बडी कुशलतासे बना लेता था। इससे मुझे आय भी हो जाती थी। ऐसे हर चित्रके लिए मुझे १० रु. मिलते थे, जो मेरे लिए पर्याप्त थे।" इसी आत्मविश्वासका आधार लेकर श्रीपाद बम्बईके सर जे. जे. स्कूल ऑफ आर्ट्समें दाखिल हो गए। स्वावलम्बन और स्वाभिमान ही गरीबोंका धन है। यह धन जिसके पास है, वह समयका सदुपयोग करता हुआ काम करता है और अपने उद्देश्यको पानेमें सफल होता है।"

सावंतवाडीमें श्री पंडितजी शिक्षा प्राप्त करनेके लिए गरीब और भोली भाली वृत्तिकी बालिकाओंके स्कूलमें शिक्षकका काम करनेवाले मामा पेंढारकर नामक एक सात्विकवृत्तिके सज्जनके पास रहे। दूसरी श्रेणीमें श्रीपादके साथ कुरान पढनेवाला अहमदखान काजी नामका एक बीस वर्षका तरुण था। हिन्दुओंके लडकोंको अपने स्तुति स्तोत्र बिलकुल नहीं आते थे। अतः काजीकी इस धर्मनिष्ठाने पंडितजीके मनमें अपने धर्मके प्रति निष्ठाके बीज बोये। आगे चलकर अंग्रेजी स्कूलमें दाखिल होनेके समय जब उस स्कूलके मुख्याध्यापक श्री पाणंदीकरने फीस माफ करनेसे इन्कार दिया और स्कूलकी फीस भरना पंडितजीके पिताजीके वशकी बात नहीं थी, तब पिताजीने पंडितजीको सलाह दी कि वे घर पर ही रहकर पौरोहित्यका कार्य करें। पर वेदाध्ययनमें रुचि होने पर भी पौरोहित्य करके दक्षिणाके लिए हाथ फैलानेकी बात पंडितजीको बिलकुल पसंद नहीं आई। इसीलिए श्री चिन्तामणि केळकरके निरीक्षणमें पंडितजीने अपनी ही श्रेणीमें पढनेवाले साथियोंको लेकर "संस्कृतभाषा प्रसारिणी" नामक एक संस्थाकी स्थापना की। वहां ये सभी सदस्य संस्कृतमें बोलनेका प्रयत्न करने लगे। इस संस्कृतभाषा विषयक कमाईका उपयोग श्रीपादरावने अपने आगेके जीवनमें बहुत किया।

सावंतवाडीमें रहते हुए श्री पंडितजी चित्रकलामें कुशल हो गए। उनके पिता श्री दामोदरपंत घरकी भित्तियोंपर उत्तम उत्तम रेखाचित्र खींचकर उन्हें रंगते थे। इस तरह जिसप्रकार वेदाध्ययन और संस्कृताध्ययनका उत्तराधिकार श्री पंडितजीको अपने पिताजीसे मिला था, उसी प्रकार चित्रकलामें नैपुण्य भी पितासे मिला था। इस प्रकार चित्रकलामें नैपुण्य भी पितासे प्राप्त हुआ हुआ एक उत्तराधिकार ही था। सावंतवाडीके रेजिडेण्ट वेस्ट्रापके द्वारा सावंतवाडीमें एक चित्रकला स्कूल खोले जानेपर पंडितजी उसमें दाखिल हो गए।

उस स्कूलमें रहते हुए पंडितजीने अपने शिक्षक श्री मालवणकरकी दृश्य चित्रित करनेकी कुशलता अपनाली। अबतक पंडितजी भी इतने कुशल हो गए थे, कि छोटे–छोटे फोटोपरसे बिल्कुल उसीके समान बडे बडे चित्र तैय्यार कर देते थे और इस प्रकार वे एक एक चित्रपर पांच–पांच रुपये कमा लेते थे। एक रुपयेमें २५–२७ सेर चावल मिलनेवाले उस समयमें पांच रुपये ही बहुत ज्यादा माने जाते थे। सावंतवाडीमें तीन बरस रहकर और चित्रकारीमें निपुणता पाकर दूसरी जगह जाकर अपनी इस कलाको और अधिक विकसित करनेकी श्रीपादकी इच्छा अत्यधिक बलवती हो गई। पर इनके पिताकी इच्छा यह थी कि श्रीपाद घर पर ही रहकर घरका काम देखे। वे श्रीपादको कहीं बाहर जाने देना नहीं चाहते थे। अतः जब श्रीपादने अपने पिताके सामने बाहर जानेकी अभिलाषा प्रकट की तो उनके पिताने कहा कि "यहीं रहकर घरका काम देखो। कहीं दूसरी जगह जानेकी इच्छा मत करो, क्योंकि जो भी इस घरसे बाहर गया, वह फिर कभी लौटकर इस घरसें नहीं आया।" श्रीपादके पिताके ये वचन अक्षरशः सत्य निकले। श्रीपाद अपने गांवसे जो बाहर पडे, तो फिर कभी अपने गांव लौटकर न जा सके। पर ऐसे छोटे मोटे विघ्नोंपर होनहार पुरुष कभी ध्यान नहीं देते अपने पिताके कहनेपर भी श्रीपाद अपनी मन्शाको तब्दील न कर सके और अपनी किस्मत आजमानेकी हसरत लेकर श्री पंडितजी बम्बईकी तरफ चल पडे। [क्रमशः]

१४३६ स नो नेदिष्ठं ददृशान आ भराग्ने देवेभिः सचनाः सुचेतुना महो रायः सुचेतुना ।
महिं शविष्ठ नस्कृधि संचक्षे भुजे अस्यै ।
महिं स्तोतृभ्यो मघवन् त्सुवीर्यं मथीरुग्रो न शवसा ॥ ११ ॥

[१२८]

(ऋषिः- परुच्छेपो दैवोदासिः । देवता- अग्निः । छन्दः- अत्यष्टिः ।)

१४३७ अयं जायत मनुषो धरीमणि होता यजिष्ठ उशिजामनु व्रतमग्निः स्वमनु व्रतम् ।
विश्वश्रुष्टिः सखीयते रयिरिव श्रवस्यते ।
अदब्धो होता नि षददिळस्पदे परिवीत इळस्पदे ॥ १ ॥

अर्थ— [१४३६] हे (अग्ने) अग्रणी ! (नः नेदिष्ठं ददृशानः) हमें पाससे भी तेजस्वी दीखनेवाला (सः) वह तू (देवेभिः सचनाः) देवोंके द्वारा सत्कारको प्राप्त होता है । (सुचेतुना महः रायः आभर) तू प्रसन्न मनसे हमें उत्कृष्ट धन भरपूर दे । हे (शविष्ठ) बलवान् अग्ने ! (संचक्षे अस्यै भुजे) दीर्घायु प्राप्तिके लिए और इस पृथ्वीका उपभोग करनेके लिए (नः महि कृधि) हमें महान् यशवाला कर । हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् अग्ने ! तू (स्तोतृभ्यः महि सुवीर्यं) स्तोताओंको उत्तम बल दे तथा (उग्रः न शवसा मथीः) वीरके समान अपने बलसे शत्रुओंको नष्ट कर ॥ ११ ॥

१ संचक्षे अस्यै भुजे— दीर्घायु प्राप्तिके लिए ही संसारका उपभोग करें, अपना उपभोग सीमातीत न होकर दीर्घायु प्राप्तिमें सहायक हो ।

[१२८]

[१४३७] (होता यजिष्ठः अयं अग्निः) देवोंको बुलानेवाला अतीव यज्ञशील यह अग्नि (उशिजां व्रतं स्वव्रतं अनु मनुषः जायत) फलोंकी कामना करनेवालोंके सोमयागादिरूप कर्म और अपने व्रतोंको उद्देश्यमें रखकर मनुष्यसे अरणियों द्वारा उत्पन्न होता है । (सखीयते विश्वश्रुष्टिः श्रवस्यते रयिः इव) यह अपने साथ मैत्रीकी इच्छा करनेवालेको सब कुछ देता है और धनकी इच्छा करनेवालेके लिए यह धनके समुद्रके समान ही है । (अदब्धः होता परिवीतः इळस्पदे धरीमणि इळस्पदे निषदत्) कभी पीडित न होनेवाला, होतारूपसे ऋत्विजोंसे घिरा हुआ यह अग्नि व्यवस्थित वेदीमें विराजता है (इळस्पदे निषीदत्) वह निश्चयसे वेदीमें जाकर विराजता है ॥ १ ॥

१ सखीयते विश्वश्रुष्टिः— अपने साथ मैत्री करनेवालेको यह सब तरहके उपभोगके पदार्थ देता है ।

२ श्रवस्यते रायः इव— धनकी इच्छा करनेवालेके लिए यह मानों धनका सागर ही है ।

भावार्थ— यह अग्रणी पाससे भी देदीप्यमान दीखता है, अतः सत्कारके योग्य है, यह अग्नि हमें उत्कृष्ट धन दे और हम उस धनका उत्तम उपयोग कर दीर्घायु प्राप्त करें ॥ ११ ॥

अपने कर्मोंको पूरा करनेके लिए यह अग्नि उत्पन्न होता है । यह अन्योंके भी कर्मोंको पूर्ण करता है यह अपने उपासकोंके लिए हर तरहके पदार्थ एवं धन देता है ॥ १ ॥

१४३८ तं यज्ञसाधमपि वातयाम—स्यृतस्य पथा नमसा हविष्मता देवताता हविष्मता ।
स नं ऊर्जामुपाभृ—त्यया कृपा न जूर्यति ।
यं मातरिश्वा मनवे परावतो देवं भाः परावतः ॥ २ ॥
१४३९ एवेन सद्यः पर्येति पार्थिवं मुहुर्गी रेतो वृषभः कनिक्रदद् दधद् रेतः कनिक्रदत् ।
शतं चक्षाणो अक्षभि—र्देवो वनेषु तुर्वणिः ।
सदो दधान उपरेषु सानु—ष्वग्निः परेषु सानुषु ॥ ३ ॥
१४४० स सुक्रतुः पुरोहितो दमेदमे ऽग्निर्यज्ञस्याध्वरस्य चेतति क्रत्वा यज्ञस्य चेतति ।
क्रत्वा वेधा इषूयते विश्वा जातानि पस्पशे ।
यतो घृतश्रीरतिथिरजायत वह्निर्वेधा अजायत ॥ ४ ॥

अर्थ— [१४३८] हम लोग (ऋतस्य पथा हविष्मता नमसा हविष्मता देवताता) सत्यके मार्गसे, आहुतियोंसे नम्रतासे और हव्यवाले यज्ञसे (यज्ञसाधं तं अपि वातयामसि) यज्ञके साधक उस अग्निकी सेवा करते हैं (यं देवं मातारिश्वा मनवे परावतः परावतः भाः) जिस अग्निको मातरिश्वा वायुने मनुके लिये बहुत दूरसे लाकर प्रदीप्त किया था। (सः नः उर्जा उपाभृति अया कृपा न जूर्यति) वह अग्नि हमारे अन्नको स्वीकार करके भी अपने सामर्थ्यसे कभी भी क्षीण नहीं होता ॥ २ ॥

१ ऋतस्य पथा नमसा तं वातयामसि— सत्यके मार्गसे तथा नम्रतासे उस अग्रणीकी हम सेवा करते हैं ।

२ देवं मातारिश्वा मनवे परावतः परावतः भाः— इस देवको वायु मनुष्योंके हितके लिए बहुत दूरसे लाया था ।

[१४३९] (शतं अक्षभिः वनेषु चक्षाणः) सैंकडों आंखों अर्थात् ज्वालाओंसे वनोंमें प्रकाशित होता हुआ (उपरेषु सानुषु परेषु सानुषु) पासके और दूरके पर्वत शिखरों पर (सदः दधानः) अपना स्थान बनाता हुआ (मुहुः गीः वृषभः रेतः दधत् कनिक्रदत्) सदा प्रशंसित होनेवाला, बलवान्, वीर्यको धारण करनेवाला तथा गर्जना करनेवाला (तुर्वणिः देवः अग्निः) शत्रुओंकी हिंसा करनेवाला यह देव अग्नि (एवेन सद्यः पार्थिवं परि एति) सरल मार्गसे शीघ्र ही पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करता है ॥ ३ ॥

[१४४०] (सुक्रतुः पुरोहितः स अग्निः) शोभनकर्मवाला, आगे रहनेवाला वह अग्रणी (दमे दमे अध्वरस्य यज्ञस्य चेतति) घरघरमें नाश रहित यज्ञके कर्ममें प्रज्ज्वलित होता है । (क्रत्वा यज्ञस्य चेतति) शोभन-कर्म द्वारा यज्ञके कर्तव्यमें प्रज्ज्वलित होता है । (क्रत्वा वेधाः इषूयते) प्रकृष्ट कर्मसे यह बुद्धिमान् अग्नि अन्नकी इच्छा करनेवालोंके लिए (विश्वा जातानि पस्पशे) सब तरहके पदार्थोंको प्रदान करता है (यतः घृतश्रीः अतिथिः अजायत) क्योंकि यह घृत खानेवाला अतिथिके रूपमें पूज्य होकर उत्पन्न हुआ है । और (वह्निः वेधाः अजायत) यह हविको वहन करनेवाला तथा बुद्धिमान् भी है ॥ ४ ॥

भावार्थ— सत्यके मार्ग पर चलनेसे और नम्रतापूर्वक व्यवहार करनेसे ही यह अग्रणी प्रसन्न रहता है । यह सदा सामर्थ्ययुक्त रहता है कभी क्षीण नहीं होता ॥ २ ॥

यह सर्वत्र प्रकाशित होता हुआ बलवान् अग्नि सभी जगह अपना निवास स्थान बनाता है ॥ ३ ॥

यह अग्नि घरघरमें प्रज्ज्वलित होता है । इसके जलनेसे यज्ञका ज्ञान होता है । यह बुद्धिमान् तथा उत्तम कर्म करनेवाला है ॥ ४ ॥

१४४१ क्रत्वा यदस्य तविषीषु पृञ्चते ऽग्नेरवेण मरुतां न भोज्ये–षिराय न भोज्या ।
स हि ष्मा दानमिन्वति वसूनां च मज्मना ।
स नस्त्रासते दुरितादभिहुतः शंसादघादभिह्रुतः ॥ ५ ॥

१४४२ विश्वो विहाया अरतिर्वसुर्दधे हस्ते दक्षिणे तरणिर्न शिश्रथ–च्छ्रवस्यया न शिश्रथत् ।
विश्वस्मा इदिषुध्यते देवत्रा हव्यमोहिषे ।
विश्वस्मा इत् सुकृते वारमृण्व–त्यग्निर्द्वारा व्यृण्वति ॥ ६ ॥

१४४३ स मानुषे वृजने शंतमो हितो३ ऽग्निर्यज्ञेषु जेन्यो न विश्पतिः प्रियो यज्ञेषु विश्पतिः ।
स हव्या मानुषाणा–मिळा कृतानि पत्यते ।
स नस्त्रासते वरुणस्य धूर्ते–र्महो देवस्य धूर्तेः ॥ ७ ॥

अर्थ— [१४४१] (यत्) जिस कारण उपासक (मरुतां न) मरुतोंको अर्पित करनेके समान (अस्य अग्नेः तविषीषु) इस अग्निकी ज्वालाओंको (क्रत्वा अवेन) बुद्धिपूर्वक और आदरपूर्वक (भोज्या पृंचते) आहुति देते हैं अथवा (इषिराय भोज्या न) याचकको भोजन देनेके समान इस अग्निको हवि देते हैं, इस कारण (स मज्मना वसूनां दानं इन्वति) वह अग्नि अपने बलसे उपासकोंको धनका दान करता है । वह हमें (अभिहुतः दुरितात्) पराभव और पापसे (त्रायते) बचाता है तथा वह हमें (शंसात्) शापोंसे (अभिह्रुतः) पराभवसे (अघात्) पापसे बचावे ॥५॥

[१४४२] (विश्वः विहाया अरतिः अग्निः) विश्वव्यापी, महान् और सम्पन्न अग्नि (तरणिः न दक्षिणे हस्ते वसुः दधे) सूर्यकी तरह दाहिने हाथमें यजमानको देने योग्य धन धारण करता है । उसका वह हाथ (श्रवस्यया) यशाभिलाषियोंको धन देनेके लिये (शिश्रथत्) खुला रहता है । (न शिश्रथत्) दुर्जनोंके लिए नहीं खुला रहता है । हे अग्ने ! (देवत्रा इषुध्यते विश्वस्मै हव्यं ओहिषे) दिव्यगुणोंसे युक्त तू हविकी कामना करनेवाले सब देवोंके लिए हविका वहन करता है । तथा (विश्वस्मै सुकृते वारं ऋण्वति, द्वारा व्यृण्वति) सब उत्तम और श्रेष्ठ पुरुषोंके लिये वरण करने योग्य धनको प्रदान करता है और धनके द्वारको उनके लिये खोल देता है ॥ ६ ॥

१ सुकृते वारं ऋण्वति, द्वारा विऋण्वति— उत्तम कर्म करनेवालोंके लिए यह धन देता है, उनके लिए यह धनके द्वार खोल देता है ।

[१४४३] (सः अग्निः) वह अग्नि (मानुषे वृजने, यज्ञेषु) मनुष्योंके पाप दूर करनेके निमित्त भूत कार्योंमें और यज्ञोंमें (शंतमः हितः) अत्यन्त सुख देनेवाला और हितकारी है, तथा (जेन्यः न विश्पतिः यज्ञेषु विश्पतिः प्रियः) विजयी राजाकी तरह यज्ञोंमें प्रजाओंका पालक और प्रिय है । यह अग्नि (मानुषाणां हव्या इळा कृतानि) यजमानोंके हविको स्वीकार करनेके उद्देश्यसे आता है । (सः वरुणस्य धूर्तेः नः त्रासते) वह यज्ञमें बाधा पहुंचानेवाले धूर्तोंसे हमारी रक्षा करे; तथा (महः देवस्य धूर्तेः) महान् देवकी हिंसासे हमारा उद्धार करे ॥ ७ ॥

भावार्थ— हम बुद्धिपूर्वक और आदरसे अग्निको आहुतियां देते हैं, अतः वह हमें हर तरहके संकटोंसे बचावे ॥ ५ ॥

यह अपने हाथमें सदा धनको धारण किए रहता है, पर वह धन यशाभिलाषी उत्तम कर्म करनेवालोंको ही देता है, दुष्टों और दुराचारियोंको नहीं ॥ ६ ॥

वह अग्रणी संघटनके कार्योंमें सहायता देकर सुख बढाता है, वह राजाकी तरह प्रजाका पालन करता है, तथा यज्ञोंमें विघ्न करनेवाले धूर्तोंसे बचाता है ॥ ७ ॥

१४४४ अग्निं होतारमीळते वसुधितिं प्रियं चेतिष्ठमरतिं न्येरिरे हव्यवाहं न्येरिरे ।
विश्वायुं विश्ववेदसं होतारं यजतं कविम् ।
देवासो रण्वमवसे वसूयवो गीर्भी रण्वं वसूयवः ॥ ८ ॥

[१२९]

(ऋषिः- परुच्छेपो दैवोदासिः । देवता- इन्द्रः, ६ इन्दुः । छन्दः-अत्यष्टिः; ८-९ अतिशक्कर्यौ; ११ अष्टिः ।)

१४४५ यं त्वं रथमिन्द्र मेधसातयेऽपाका सन्तमिषिर प्रणयसि प्रानवद्य नयसि ।
सद्यश्चित्तमभिष्टये करो वशश्च वाजिनम् ।
सास्माकमनवद्य तूतुजान वेधसामिमां वाचं न वेधसाम् ॥ १ ॥

१४४६ स श्रुधि यः स्मा पृतनासु कासु चिद् दक्षाय्य इन्द्र भरहूतये नृभिरसि प्रतूर्तये नृभिः ।
यः शूरैः स्वः सनिता यो विप्रैर्वाजं तरुता ।
तमीशानास इरधन्त वाजिनं पृक्षमत्यं न वाजिनम् ॥ २ ॥

अर्थ— [१४४४] (वसुधितिं चेतिष्ठं अरतिं प्रियं होतारं अग्निं) धनधारक सुबुद्धि दाता, प्रेरणा देनेवाले सबके प्रिय होता रूप अग्निकी मनुष्य (ईळते न्येरिरे) स्तुति करते हैं एवं उससे प्रेरणा प्राप्त करते हैं। उन्होंने प्रयत्नसे (हव्यवाहं, विश्वायुं, विश्ववेदसं होतारं यजतं कविं न्येरिरे) हव्यको ले जानेवाले, सबके प्राणरूप, सब कुछ जाननेवाले, देवोंको बुलानेवाले, पूजाके योग्य और मेधावी अग्निको पूर्णरूपसे प्रदीप्त किया । इस कारण (देवासः वसूयवः अवसे) ऋत्विक् लोग अर्थाभिलाषी होकर अपनी रक्षाके लिये (रण्वं गीर्भिः) उस रमणीय अग्निकी स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं ॥ ८ ॥

[१२९]

[१४४५] हे (इषिर) प्रेरक (इन्द्र) इन्द्र ! (मेध-सातये) यज्ञकी प्राप्तिके लिये (त्वं) तू (यं) जिस (अपाका) अपरिपक्व (सन्तं) के पास (रथं) रथ (प्र नयसि) ले जाता है, हे (अनवद्य) पाप-रहित ! तू उसे (प्र नयसि) आगे बढाता है । तू (तं) उसे (सद्यः चित्) शीघ्र ही (अभिष्टये) अभीष्ट पदार्थके देनेके योग्य (करः) बना देता है (वाजिनं च) और उस अन्नवालेको तू (वशः) चाहता है । हे (अनवद्य) पाप-रहित और (तूतुजान) शीघ्र कार्य करनेवाले इन्द्र ! (सः) वह तू (वेधसां) विद्वानोंकी (वाचं न) वाणीके समान (अस्माकं) हम (वेधसां) ज्ञाताओंकी (इमां) यह वाणी सुन ॥ १ ॥

१ अपाका सन्तं रथं प्र नयसि, प्र नयसि— जो भक्त अपरिपक्व बुद्धिवाला होता है, उसके पास इन्द्र रथ ले जाता है, और उसे आगे बढाता है ।

[१४४६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यः स्म) जो तू (कासु चित्) किसी भी (पृतनासु) संग्रामोंमें (नृ-भिः) वीरोंके साथ (भर-हूतये) भरण-पोषण निमित्त हुए युद्ध और उन्हीं (नृ-भिः) वीर मनुष्योंके साथ (प्र-तूर्तये) शत्रु-नाशके काममें (दक्षाय्यः) कुशल (असि) है। (सः) वह तू हमारी बात (श्रुधि) सुन । (यः) जो (शूरः) शूर (स्वः) स्वयं (सनिता) प्राप्त करनेवाला और (यः) जो (विप्रैः) बुद्धिमानोंके साथ मिलकर (वाजं) धन (तरुता) बाँटनेवाला है (वाजिनं अत्यं न) जिस प्रकार वीर बलशाली घोडेका सहारा लेते हैं, उसी प्रकार (ईशानासः) समर्थ लोग (पृक्षं वाजिनं) पूर्ण करनेवाले तथा बलवान् इस इन्द्रका (इरधन्त) आश्रय करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— वह अग्रणी बुद्धिदाता प्रेरणा देनेवाला सबका प्रिय है, उसीसे सब मनुष्य प्रेरणा प्राप्त करते हैं । उसी रमणीय अग्निकी सब स्तुति करते हैं ॥ ८ ॥

जो साधक अपरिपक्व बुद्धिवाला होते हुए भी इन्द्र पर श्रद्धा रखता है, उस साधककी यह इन्द्र सहायता करता है और उसे आगे बढाता है । तथा अभीष्ट पदार्थकी प्राप्तिके लिए इन्द्र उसे आगे बढाता है ॥ १ ॥

१४४७ दुस्मो हि ष्मा वृषणं पिन्वसि त्वचं कं चिद् यावीररुं शूर मर्त्यं परिवृणक्षि मर्त्यम् ।
इन्द्रोत तुभ्यं तद् दिवे तद् रुद्राय स्वयशसे ।
मित्राय वोचं वरुणाय सप्रथः सुमृळीकाय सप्रथः ॥ ३ ॥

१४४८ अस्माकं व इन्द्रमुश्मसीष्टये सखायं विश्वायुं प्रासहं युजं वाजेषु प्रासहं युजम् ।
अस्माकं ब्रह्मोतये ऽवा पृत्सुषु कासु चित् ।
नहि त्वा शत्रुः स्तरते स्तृणोषि यं विश्वं शत्रुं स्तृणोषि यम् ॥ ४ ॥

१४४९ वि षू नमातिमतिं कयस्य चित् तेजिष्ठाभिररणिभिर्नोतिभि—रुग्राभिरुग्रोतिभिः ।
नेषि णो यथा पुरा—ऽनेनाः शूर मन्यसे ।
विश्वानि पूरोरप पर्षि वह्नि—रासा वह्निर्नो अच्छ ॥ ५ ॥

अर्थ—[१४४७] हे इन्द्र ! तू (दस्मः हि) दर्शनीय है (वृषणं) वर्षा करनेवाले (त्वचं) आवरक मेघको जलसे (पिन्वसि) पूर्ण करता है । हे (शूर) शूर ! तू ही (कंचित्) प्रसिद्ध (अररुं) कष्ट पहुँचानेवाले (मर्त्यं) मरने योग्य, असुरको (यावीः) दूर भगाता और ऐसे (मर्त्यं शत्रुको (परि-वृणक्षि) काटता है। (उत) और हे (इन्द्र) इन्द्र ! मैं (तुभ्यं) तुझे, (दिवे) तेजके लिये (स्व-यशसे) अपने यशके लिए (रुद्राय) रुद्रके लिए (मित्राय) मित्रके लिए और (सु-मृडीकाय) सुख देनेवाले (वरुणाय) वरुणके लिये (तत् तत्) वह (स-प्रथः स-प्रथः) विस्तारसे युक्त वचन (वोचं) कहता हूँ ॥ ३ ॥

१ शूर ! अररुं मर्त्यं यावीः, परिवृणक्षि— यह शूर इन्द्र कष्ट पहुंचानेवाले, इसीलिए मारने योग्य असुरको दूर करता और काटता है ।

[१४४८] हे मनुष्यो ! (वः) तुम्हारे (अस्माकं) और हमारे (सखायं) मित्र (विश्व-आयुं) पूरी आयु देनेवाले (प्र-सहं) शत्रु-नाशक (युजं) सहयोगी (इन्द्रं) इन्द्रको हम (इष्टये) यज्ञमें आनेके लिये (उश्मसि) चाहते हैं। हे इन्द्र ! तू हमारी (ऊतये) रक्षाके लिये (कासु चित्) सभी (पृत्सुषु) युद्धोंमें (अस्माकं) हमारे (ब्रह्म) ज्ञानकी (अव) रक्षा कर । (यं यं) जिस (विश्वं शत्रुं) शत्रु-समुदायको तू (स्तृणोषि स्तृणोषि) नष्ट करता है वह (शत्रुः) शत्रु (त्वा) तुझे (नहि) नहीं (स्तरते) मार सकता ॥ ४ ॥

१ यं विश्वं शत्रुं स्तृणोषि शत्रुः त्वा नहि स्तरते— यह इन्द्र सारे शत्रुओंको मारता है, पर सारे शत्रु मिलकर भी इस अकेले इन्द्रको नहीं मार सकते ।

[१४४९] हे (उग्र) वीर इन्द्र ! तू (तेजिष्ठाभिः) प्रज्ज्वलित (अरणि-भिः) समिधाओंके (न) समान तेजस्वी (ऊति-भिः) रक्षा-साधनों और (उग्राभिः) वीर्ययुक्त (ऊति-भिः) रक्षणों द्वारा इस (कयस्य चित्) प्रसिद्ध शत्रुके (अति-मतिं) अभिमानको (वि सु नम) अत्यन्त नीचा कर दे। हे (शूर) शूर ! तू (अनेनाः) निष्पाप (मन्यसे) माना जाता है। (पुरा यथा) पहलेके समान (नः) हमें (नेषि) आगे ले चल । (वह्निः) आगे चलनेवाला तू (पूरोः) मनुष्योंके (विश्वानि) सारे दुर्गुण (अप पर्षि) दूर कर दे। तू (नः) हमारे (अच्छ) सम्मुख (आसा) समीप ही सब साधन (वह्निः) प्राप्त करानेवाला है ॥ ५ ॥

१ उग्राभिः ऊतिभिः कयस्य चित् अति मतिं नम— यह इन्द्र शक्तिशाली रक्षण साधनोंसे भयंकर शत्रुके अभिमानको भी झुका देता है ।

२ अनेनाः मन्यसे— शत्रुओंको मारने पर भी यह इन्द्र निष्पाप माना जाता है ।

भावार्थ— यह इन्द्र बडा सामर्थ्यशाली है । अतः भरणपोषणके साधन अन्नके लिए किए जानेवाले युद्धोंमें यह इन्द्र वीर मरुतोंके साथ मिलकर शत्रुनाशका कार्य बडी ही कुशलतासे करता है । इसीलिए समर्थ लोग भी इस इन्द्रका आश्रय उसी प्रकार लेते हैं, जिस प्रकार वीरगण युद्धमें बलवान् घोडेका आश्रय लेते हैं ॥ २ ॥

यह इन्द्र मेघोंको जलसे पूर्ण करता है । कष्ट देनेवाले असुरको मारता है। यह इन्द्र शत्रुओंके लिए रुद्रके समान भयंकर रूपवाला, भक्तके लिए मित्रके समान हित करनेवाला, उत्तम सुख देनेवाला, तथा सबके द्वारा वरणीय है ॥ ३ ॥

१४५० प्र तद् वोचेयं भव्यायेन्दवे हव्यो न य इषवान् मन्म रेजति रक्षोहा मन्म रेजति ।
स्वयं सो अस्मदा निदो वधैरजेत दुर्मतिम् ।
अव स्रवेदघशंसोऽवतर—मव क्षुद्रमिव स्रवेत् ॥ ६ ॥

१४५१ वनेम तद्धोत्रया चितन्त्या वनेम रयिं रयिवः सुवीर्यं रण्वं सन्तं सुवीर्यम् ।
दुर्मन्मानं सुमन्तुभि—रेमिषा पृचीमहि ।
आ सत्याभिरिन्द्रं द्युम्नहूतिभि—र्यजत्रं द्युम्नहूतिभिः ॥ ७ ॥

अर्थ— [१४५०] (यः) जो (इष-वान्) गतिमान् (हव्यः न) प्रशंसाके योग्य इन्द्रके समान (मन्म) स्तुतिके योग्य (रेजति) होता है, जो (रक्षः-हा) दुष्टोंका नाशक होनेके कारण (मन्म) स्तुतिके योग्य (रेजति) होता है उस (भव्याय) उत्तम (इन्दवे) सोमके लिए मैं (तत्) वह स्तोत्र (प्रवोचेयं) बोलूं। (सः) वह (निदः) निन्दकोंको (स्वयं) स्वयं (अस्यत्) हमसे दूर (आ) करे, (वधैः) मारनेके साधनोंसे (दुः-मतिं) दुष्ट बुद्धिवाले असुरको (अजेत) दूर हटा दे । तब (अघ-शंसः) पापकी कामनावाला असुर (अव-तरं) बहुत नीचे (अवस्रवेत्) गिर जाय, (क्षुद्रं-इव) थोडेसे जलके समान (अव स्रवेत्) नीचेके स्थानमें पडा रहे ॥ ६ ॥

१ इषवान् हव्यः न मन्मः— प्रयत्न और प्रगति करनेवाला मनुष्य प्रशंसाके योग्य इन्द्रके समान स्तुति योग्य होता है।

[१४५१] हे (रयि-वः) धनवाले इन्द्र ! हम (चितन्त्या) उत्साह बढानेवाली (होत्रया) वाणीसे (तत्) उस धनको (वनेम) प्राप्त करें। हम (सु-वीर्यं) उत्तम बलयुक्त (रयिं) धनको (वनेम) प्राप्त करें। (रण्वं) रमणीय, साथ (सन्तं) रहनेवाले, (सु-वीर्यं) शक्तिसे भरपूर धनका लाभ करें। (सुमन्तु-भिः) उत्तम मननीय विचारोंसे (इषा) अन्नसे (ईं) इस (दुः-मन्मानं) जाननेके लिये कठिन तुझ इन्द्रको (आ पृचीमहि) युक्त करें। (सत्याभिः) सच्ची (द्युम्नहूतिभिः) ऐश्वर्यवर्धक स्तुतियोंसे तुझ (इन्द्रं) इन्द्रको (आ) प्रशंसित करें। (द्युम्न-हूतिभिः) यशोवर्धक स्तुतियोंसे (यजत्रं) यजनीय इन्द्रको युक्त करें ॥ ७ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र सभी मनुष्योंका मित्रके समान हित करनेवाला है। मनुष्यको पूर्ण आयु प्रदान करता है। यह इतना वीर है कि यह अकेला ही अनेक शत्रुओंको मार सकता है, पर सब शत्रु मिलकर भी इसे नहीं मार सकते ॥ ४ ॥

प्रज्वलित समिधाओंके समान तेजस्वी यह इन्द्र अपने शक्तिशाली संरक्षणके साधनोंसे शत्रुके अभिमानको ठंडा कर देता है और अपने भक्तोंको आगे ले चलता है। बहुतसे शत्रुओंको मारने पर भी यह इन्द्र निष्पाप ही बना रहता है। शत्रुओंसे मार खाना पाप है, पर उन्हें मारना पाप नहीं है ॥ ५ ॥

जो मनुष्य अपने प्रयत्नोंसे प्रगति करता है वह इन्द्रकी तरह स्तुतिके योग्य और प्रशंसनीय होता है। वह दुष्टोंका नाशक होनेके कारण भी सबके द्वारा प्रशंसित होता है। वह निन्दकोंको, दुष्ट बुद्धिवालोंको, दुष्टवचन बोलनेवालोंको बहुत नीचे गिरा देवे। जैसे थोडासा जल बहुत जल्दी सूख जाता है, उसी प्रकार शत्रुओंको शीघ्र ही सुखा देवे ॥ ६ ॥

वाणी सदा उत्साह बढानेवाली हो। सभी ऐसी उत्तम वाणी बोलें कि जिससे सुननेवाले और बोलनेवाले दोनोंका उत्साह बढे। धन शक्ति बढानेवाला हो। सदा सुविचारोंसे युक्त रहें ॥ ७ ॥

१४५२ प्रप्रा वो अस्मे स्वयशोभिरूती परिवर्ग इन्द्रो दुर्मतीनां दरीमन् दुर्मतीनाम् ।
स्वयं सा रिषयध्यै या न उपेषे अत्रैः ।
हतेमसन्न वक्षति क्षिप्ता जूर्णिर्न वक्षति ॥ ८ ॥

१४५३ त्वं न इन्द्र राया परीणसा याहि पथाँ अनेहसा पुरो याह्यरक्षसा ।
सचस्व नः पराक आ सचस्वास्तमीक आ ।
पाहि नो दूरादारादभिष्टिभिः सदा पाह्यभिष्टिभिः ॥ ९ ॥

१४५४ त्वं न इन्द्र राया तरूषसोग्रं चित् त्वा महिमा सक्षदवसे महे मित्रं नावसे ।
ओजिष्ठ त्रातरविता रथं कं चिदमर्त्य ।
अन्यमस्मद् रिरिषेः कं चिदद्रिवो रिरिक्षन्तं चिदद्रिवः ॥ १० ॥

अर्थ— [१४५२] (इन्द्रः) इन्द्र (स्वयशोभिः) अपने यश बढानेके साधनोंसे (दुः-मतीनां) दुष्टोंके (परिवर्गे) दूर भगाने और उन (दुः-मतीनां) दुर्बुद्धियोंके (दरीमन्) नाश करनेमें (वः) तुम्हारा और (अस्मे) हमारा (प्र प्र) विशेष (ऊती) रक्षक होता है। (नः) हमें (रिषयध्यै) नष्ट करनेके लिये (उप-ईषे) समीप पहुँचनेके लिये (या) जो (जूर्णिः) वेगवती सेना (अत्रैः) भक्षक असुरों द्वारा (क्षिप्ता) भेजी गई है (सा) वह (स्वयं) स्वयं (हता ईं) मर ही (असत्) जाये। वह हमारे पास (न) न (वक्षति) पहुँचे, (न) बिल्कुल न (वक्षति) पहुँचे ॥ ८ ॥

[१४५३] हे (इन्द्र) इन्द्र (त्वं) तू (परीणसा) सब ओरसे (राया) धनके साथ (अनेहसा) पाप-रहित (पथा) मार्गसे (नः) हमारे पास (याहि) आ। (अरक्षसा) राक्षस रहित मार्गसे (पुरः) आगे (याहि) जा। (नः) हमें (पराके) दूर स्थानमें (आ सचस्व) प्राप्त हो और (अस्त- ईके) समीपके स्थानमें (आ सचस्व) प्राप्त हो। (दूरात्) दूर और (आरात्) निकटसे (अभिष्टि-भिः) इच्छापूर्ति द्वारा (नः) हमें (पाहि) बचा। (अभिष्टि-भिः) योग्य वस्तुओंके दानसे (सदा) सदा हमें (पाहि) बचा ॥ ९ ॥

१ राया अनेहसा पथा याहि— धन होने पर भी मनुष्य पापरहित मार्गसे ही चले।

[१४५४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं) तू (तरूषसा) तारनेवाले (राया) धनसे (नः) हमें दुःखोंसे तार। अपने (महिमा) यशकी (अवसे) रक्षाके लिए हम (त्वा) तुझ (उग्रं चित्) उग्रके ही (सक्षत्) पास रहें। (मित्रं न) सूर्यके समान (महे अवसे) बडी रक्षाके लिए तेरे पास रहें। हे (ओजिष्ठ) ओजसे पूर्ण (त्रातः) पालक (अवितः) रक्षक और (अमर्त्य) अमर देव इन्द्र ! तू (कं चित्) किसी (रथं) रथपर चढकर आ। हे (अद्रिवः) वज्रधारी ! (अस्मत्) हममें (अन्यं) भिन्न (कं चित्) किसीके ऊपर (रिरिषेः) क्रोध कर, हे (अद्रि-वः) वज्रधारी ! (रिरिक्षन्तं चित्) हिंसकके ऊपर क्रोध कर ॥ १० ॥

भावार्थ— इन्द्रसे रक्षित मनुष्योंके पास दुष्टोंकी सेना नहीं पहुँच सकती ॥ ८ ॥

मनुष्य धन प्राप्त करके आभिमानी न हो। वह सदा नम्र रहकर पापसे रहित मार्ग पर ही चले। धनके बल पर लोगों पर अत्याचार न करे। उत्तम मार्गसे चलनेवाला व्यक्ति हमेशा उपद्रवोंसे रहित होकर आगे ही बढता जाता है। यह इन्द्र सर्व व्यापक होनेसे पास भी है और दूर भी है इसलिए वह सब जगहसे अपने भक्तोंकी रक्षा करता है ॥ ९ ॥

इन्द्र हिंसक दुष्ट जनपर ही क्रोध करता और उसे ही मारता है। सज्जनको नहीं। वह अपने भक्तोंके यशकी रक्षा करता और मित्रके समान उसका हित करता है ॥ १० ॥

१४५५ पाहि नं इन्द्र सुष्टुत स्रिधो ऽवयाता सदमिद् दुर्मतीनां देवः सन् दुर्मतीनाम् ।
हन्ता पापस्य रक्षसं-स्त्राता विप्रस्य मावंतः ।
अधा हि त्वां जनिता जीजंनद् वसो रक्षोहणं त्वा जीजंनद् वसो ॥ ११ ॥

[१३०]

(ऋषिः- परुच्छेपो दैवोदासिः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- अत्यष्टिः; १० त्रिष्टुप् ।)

१४५६ इन्द्रं याह्युपं नः परावतो नायमच्छां विदथानीव सत्पंति-रस्तं राजेव सत्पंतिः ।
हवांमहे त्वा वयं प्रयंस्वन्तः सुते सचां ।
पुत्रासो न पितरं वाजंसातये मंहिष्ठं वाजंसातये । ॥ १ ॥

१४५७ पिबा सोमंमिन्द्र सुवानमद्रिभिः कोशेन सिक्तमंवतं न वंसंग-स्तातृषाणो न वंसंगः ।
मदाय हर्यताय ते तुविष्टमाय धायसे ।
आ त्वां यच्छन्तु हरितो न सूर्य-महा विश्वेव सूर्यम् ॥ २ ॥

अर्थ- [१४५५] हे (सु-स्तुत) भलीभाँति स्तुतिके योग्य (इन्द्र) इन्द्र ! (स्रिधः) पापसे (नः) हमें (पाहि) बचा । तू (दुः-मतीनां) दुर्बुद्धि जनोंको (सदं इत्) सदा ही (अव-याता) नीचे ले जानेवाला है । (देवः) देव (सन्) होकर (दुः-मतीनां) दुष्ट बुद्धिवालोंको नीचे ले जानेवाला है । तू (पापस्य) पापी (रक्षसः) राक्षसका (हन्ता) घातक और (मा-वतः) मेरे जैसे (विप्रस्य) ज्ञानीका (त्राता) पालक है । (अध हि) इसी लिए हे (वसो) निवास देनेवाले ! (जनिता) उत्पन्न करनेवालेने (त्वा) तुझे (जीजनत्) प्रकट किया, हे (वसो) सबके आश्रय ! जनिताने (रक्षः हनं) दुष्ट विनाशक (त्वा) तुझ इन्द्रको (जजिनत्) प्रकट किया ॥ ११ ॥

१ पापस्य रक्षसः हन्ता विप्रस्य त्राता— यह इन्द्र पापी राक्षसोंका विनाशक और ज्ञानियोंका रक्षक है ।

[१३०]

[१४५६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अयं न) इस अग्निके समान (सत्-पतिः) श्रेष्ठपालक तू अन्य (विदथानि इव) यज्ञोंके समान (परा-वतः) दूर देशसे (नः उप) हमारे समीप (अच्छ) सामने (आ याहि) आ । (राजा-इव) राजाके समान (सत्-पतिः) श्रेष्ठोंका पालक तू हमारे (अस्तं) घर आ । (पुत्रासः न) पुत्र जैसे (पितरं) पिताको बुलाते हैं वैसे (वाज-सातये) अन्नकी प्राप्तिके लिये (वयं) हम (प्रयस्वन्तः) अन्नवाले यजमान (सुते) यज्ञमें (सचा) साथ मिलकर (त्वा) तुझे (हवामहे) बुलाते हैं । (वाज-सातये) अन्न-लाभके लिये तुझ (मंहिष्ठ) दानीको बुलाते हैं ॥ १ ॥

[१४५७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (वंसगः) बैल (अवतं न) जैसे कुएँके जलको पीता है वैसे तू (कोशेन) जलसे (सिक्तं) सिंचे और (अद्रि-भिः) पत्थरोंसे कूट कर (सुवानं) निचोडे हुए (सोमं) सोमको (पिब) पी । (तातृ-षाणः) प्यासे (वंसगः) बैलके (न) समान उसे तू पी । (ते) तेरे (हर्यताय) चाहने योग्य (मदाय) मद और (तुविः-तमाय) बहुत बडे (धायसे) कर्मके लिये, (हरितः न) जैसे किरणें (सूर्यं) सूर्यको और (विश्वा इव) जैसे सारे (अहा) दिन भी (सूर्यं) सूर्यको ले जाते हैं, वैसे घोडे (त्वा) तुझे यज्ञ-स्थानमें (आ यच्छन्तु) ले जायें ॥ २ ॥

भावार्थ — यह इन्द्र अपनी प्रशंसा करनेवालोंकी पापसे रक्षा करता है और दुष्ट बुद्धियोंसे युक्त मनुष्योंका नाश करता है । यह इन्द्र पापी राक्षसोंका घातक और ज्ञानियोंका रक्षक है । इसी कामके लिए उत्पन्न करनेवालेने इस इन्द्रको प्रकट किया है और इसी कारण इन्द्र राक्षसोंके हन्ताके नामसे प्रसिद्ध हुआ है । इसी प्रकार राजा राक्षसोंका नाश और ज्ञानियोंकी रक्षा करे । प्रजा भी इन गुणोंसे युक्त व्यक्तिको ही राजा बनावे ॥ ११ ॥

जैसे पुत्र पिताको बुलाते हैं वैसे यजमान इन्द्र देवको बुलाते हैं । बुलाये जानेपर यह दूर देशसे भी अपने भक्तके घर जाकर उसे बहुत दान देता है ॥ १ ॥

यह इन्द्र श्रेष्ठ कर्मोंको करनेवाला है । इसके घोडे भी इसे उत्तम कर्मोंकी तरफ ही प्रेरित करते हैं । यह अपने घोडोंके द्वारा यज्ञोंमें जाकर सोम पीता है । इसी प्रकार राजा सदा श्रेष्ठ कर्म करे, तथा यज्ञोंमें जाकर सोम अर्थात् ब्रह्मज्ञानियोंसे ब्रह्मज्ञानका उपदेश ले ॥ २ ॥

१४५८ अविन्दद् दिवो निहितं गुहा निधिं वेर्न गर्भं परिवीतमश्मन्यनन्ते अन्तरश्मनि ।
व्रजं वज्री गवामिव सिषासन्नङ्गिरस्तमः ।
अपावृणोदिष इन्द्रः परीवृता द्वार इषः परीवृताः ॥ ३ ॥
१४५९ दादृहाणो वज्रमिन्द्रो गभस्त्योः क्षद्मेव तिग्ममसनाय सं श्यदहिहत्याय सं श्यत् ।
संविव्यान ओजसा शवोभिरिन्द्र मज्मना ।
तष्टेव वृक्षं वनिनो नि वृश्चसि परश्वेव नि वृश्चसि ॥ ४ ॥
१४६० त्वं वृथा नद्य इन्द्र सर्तवे ऽच्छा समुद्रमसृजो रथाँ इव वाजयतो रथाँ इव ।
इत ऊतीरयुञ्जत समानमर्थमक्षितम् ।
धेनूरिव मनवे विश्वदोहसो जनाय विश्वदोहसः ॥ ५ ॥

अर्थ— [१४५८] (अङ्गिरः- तमः) अङ्गिरोंमें श्रेष्ठ (दिवः वज्री) तेजस्वी वज्रधारी इन्द्रने (सिषासन्) बाँटनेकी इच्छा करते हुए, (गवां इव) जैसे गौओंके (व्रजं) स्थानको और (अश्मनि) पहाडमें (परि- वीतं) छिपे (वेः) पक्षीके (गर्भं) बच्चेको, (अनन्ते) अन्तरहित (अश्मनि) पहाडके (अन्तः) भीतर ढूंढनेवाले प्राप्त करते हैं वैसे (गुहा) गुप्त-स्थानमें (नि-हितं) रखे हुए (निधिं) धनको (अविन्दत्) प्राप्त किया। उस (इन्द्रः) इन्द्रने (परी-वृताः) गुप्त (इषः) अन्न-द्वारोंको (अप अवृणोत्) खोल दिया, (इषः) धनके (परी- वृताः) छिपे हुए (द्वारः) द्वारोंको खोल दिया ॥ ३ ॥

[१४५९] (इन्द्रः) इन्द्र (गभस्त्योः) हाथोंमें (तिग्मं वज्रं) तीक्ष्ण वज्रको (दादृहाणः) दृढतासे पकडते हुए उसे शत्रु पर (असनाय) फेंकनेके लिये (क्षद्म-इव) जलकी तीव्र धाराके समान (सं श्यत्) और तेज करता है (अहि-हत्याय) असुरको मारनेके लिये (सं श्यत्) शस्त्रको तीक्ष्ण बनाता है । हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (ओजसा) बलसे (सं-विव्यानः) युक्त होता हुआ (शवोभिः) बलसे और (मज्मना) सामर्थ्यसे (तष्टा इव) जैसे बढई (वनिनः) वनके (वृक्षं) वृक्षको काटता है, उसी तरह (निवृश्चसि) शत्रुओंको काटता है, (परश्वा इव) कुल्हाडे- के समान शत्रुको (नि वृश्चसि) काटता है ॥ ४ ॥

[१४६०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं) तूने (रथान् इव) रथोंके समान, (नद्यः नदियोंको (समुद्रं अच्छ) समुद्रकी ओर (सर्तवे) बहनेके लिये (वृथा) सहज ही (असृजः) छोड दिया। (वाज-यतः) बल बढानेवाले (रथान् इव) रथोंके समान प्रवाहोंको चलनेके लिये छोड दिया । (धेनूः इव) गायोंके समान (विश्वदोहसः) सम्पूर्ण कामना दुहनेवाली (ऊतीः) रक्षा करनेवाला नदियोंने (इतः) इस स्थानसे (मनवे) मनुष्यके लिए (अक्षितं) अक्षय, सबको (समानं) समान (अर्थं) इष्ट जलको (अयुञ्जत) जोडा । (विश्व-दोहसः) सब कुछ देनेवाली नदियोंने (जनाय) मनुष्यके लिये जल दिया ॥ ५ ॥

भावार्थ— जिसप्रकार ढूंढनेवाले गायोंके बाडेको ढूंढ निकालते हैं अथवा बहुत बडे पहाडके अन्दर भी छिपा कर रखे हुए पक्षियोंके बच्चोंको ढूंढ निकालते हैं, उसी प्रकार सूर्यने अन्त रहित बादलोंमें छिपे हुए पानीके संग्रहको खोज निकाला और उसे बरसाकर इन्द्रने मानों मनुष्योंके लिए अन्नके द्वार ही खोल दिए । पानी बरसनेसे अन्न बहुत उत्पन्न होता है, यह स्पष्ट ही है ॥ ३ ॥

इन्द्र अपने वज्रको रगड कर तीक्ष्ण बनाता और जैसे जलकी धारा वृक्षको उखाडती या कुल्हाडेसे वृक्षोंको काटते हैं वैसे शत्रुको काटता है ॥ ४ ॥

इन्द्र नदियोंके (जलप्रवाह) को मुक्त करता और चलाता है तब वे प्रजाके पास पहुँचती हैं । वे जलप्रवाह काम- दुघा गायके समान प्रजाओंकी हर कामनाओंको पूर्ण करते हैं । इसी तरह राजा अपने देशमें नहरों द्वारा प्रजाओंके पास पानी पहुंचाकर अन्नके द्वारा उन्हें सुखी और समृद्ध बनाये ॥ ५ ॥

१४६१ इमां ते वाचं वसूयन्त आयवो रथं न धीरः स्वपा अतक्षिषुः सुम्नाय त्वामतक्षिषुः ।
शुम्भन्तो जेन्यं यथा वाजेषु विप्र वाजिनम् ।
अत्यमिव शवसे सातये धना विश्वा धनानि सातये ॥ ६ ॥

१४६२ भिनत् पुरो नवतिमिन्द्र पूरवे दिवोदासाय महि दाशुषे नृतो वज्रेण दाशुषे नृतो ।
अतिथिग्वाय शम्बरं गिरेरुग्रो अवाभरत् ।
महो धनानि दयमान ओजसा विश्वा धनान्योजसा ॥ ७ ॥

१४६३ इन्द्रः समत्सु यजमानमार्यं प्रावद् विश्वेषु शतमूतिराजिषु स्वर्मीळ्हेष्वाजिषु ।
मनवे शासदव्रतान् त्वचं कृष्णामरन्धयत् ।
दक्षन्न विश्वं ततृषाणमोषति न्यर्शसानमोषति ॥ ८ ॥

अर्थ—[१४६१] हे इन्द्र ! (सु-अपाः) अच्छे कर्म करनेवाले (धीरः) धीर तथा (वसु-यन्तः) धनकी इच्छा करते हुए (आयवः) मनुष्योंने (रथं न) जैसे रथको बनाते हैं वैसे (ते) तेरे लिये (इमां) इस (वाचं) वाणीको (अतक्षिषुः) बनाया, स्तुति की । हे (विप्र) ज्ञानी इन्द्र ! (सुम्नाय) सुख, (शवसे) बल और (धना) धनोंको (सातये) देनेके लिए तुझे (शुम्भन्तः) प्रसन्न करनेवाले स्तोताओंने (अत्यं इव) घोडेके सदृश (वाजेषु) युद्धमें (वाजिनं) बलवान् (त्वां) तुझे (अतक्षिषुः) बनाया । (विश्वा) सम्पूर्ण (धनानि) धनोंको (सातये) देनेके लिये तुझे बनाया ॥ ६ ॥

[१४६२] हे (नृतो) नाचनेवाले, आनन्दसे उछलनेवाले (इन्द्र) इन्द्र ! (पूरवे) प्रजारूप (महि) महान् (दाशुषे) दानी (दिवः-दासाय) दिवोदासके लिए तूने (नवतिं) नव्वे (पुरः) नगर (भिनत्) तोडे । हे (नृतो) नृत्य करनेवाले ! तूने (दाशुषे) दानी वीरके लिए (वज्रेण) वज्रसे शत्रुके नगर तोडे । (उग्रः) उग्र वीर तूने (ओजसा) बलसे (महः) बडे (धनानि) धन (दयमानः) देते हुए (गिरेः) मेघके पास आतिथिग्वाय) अतिथिग्वके लिए (शम्बरं) शम्बरका (अव अभरत्) नाश किया । (ओजसा) बलसे (विश्वा) सब (धनानि) धन देते हुए शत्रुका नाश किया ॥ ७ ॥

१ दिवः दासः— तेजस्वी धनोंका दान करनेवाला ‘ दाश्ट दाने । ’

२ आतिथिग्व— अतिथियोंके पास जाकर उनका सत्कार करनेवाला ।

[१४६३] (शतं-ऊतिः) सैकडों रक्षाओंसे युक्त (इन्द्रः) इन्द्रने (समत्-सु) मिलकर लडे जानेवाले (विश्वेषु) सारे (आजिषु) युद्धोंमें (आर्यं) श्रेष्ठ (यजमानं) यजमानकी (प्र आवत्) रक्षा की । (स्वः-मीळहेषु) सुखको प्राप्त करानेवाले (आजिषु) युद्धोंमें रक्षा की । (मनवे) ज्ञानी मनुष्यके लिये (अव्रतान्) नियम तोडनेवालेको (शासत्) दण्ड दिया और (कृष्णां त्वचं) काले वर्णवालोंको (अरन्धयत्) विनष्ट किया । वह (दक्षत् न) जलाते हुए अग्निके समान (विश्वं) सारे (ततृषाणं) हिंसकोंको (ओषति) जला देता है (अर्शसानं) हिंसा करनेवालोंको (नि ओषति) सर्वथा जला देता है ॥ ८ ॥

१ विश्वेषु आजिषु आर्यं आवत्— इन्द्र सब युद्धोंमें केवल श्रेष्ठ मनुष्यकी ही रक्षा करता है ।

२ मनवे अव्रतान् शासत्— मननशील पुरुषके लिए नियम तोडनेवालोंपर शासन करता है ।

३ दक्षत् न विश्वं ततृषाणं ओषति— इन्द्र जलनेवाली अग्निके समान सारे हिंसकोंको जला देता है ।

भावार्थ— जैसे विद्वान् लोग रथको उत्तम कार्यके योग्य बनाते हैं वैसे स्तोता लोग इन्द्रके योग्य स्तोत्र कहते हैं । जैसे सारथि बलवान् घोडेको और अधिक बलवान् और विजयके योग्य बनाते हैं वैसे स्तोता धन पानेके लिये इन्द्रमें अधिक उत्साह भरते हैं ॥ ६ ॥

इन्द्र युद्धमें उत्साहसे जाता है और तेजस्वी धनोंका दान करनेवाले तथा अतिथिका सत्कार करनेवालोंके जयके लिए शम्बर आदिका नाश करता है तथा उन्हें अनेक तरहके ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥ ७ ॥

१४६४ सूरश्चक्रं प्र वृहज्जात ओजसा प्रपित्वे वाचमरुणो मुषायती—शान आ मुषायति ।
उशना यत् परावतो ऽजगन्नूतये कवे ।
सुम्नानि विश्वा मनुषेव तुर्वणि—रहा विश्वेव तुर्वणिः ॥ ९ ॥
१४६५ स नो नव्येभिर्वृषकर्मन्नुक्थैः पुरां दर्तः पायुभिः पाहि शग्मैः ।
दिवोदासेभिरिन्द्र स्तवानो वावृधीथा अहोभिरिव द्यौः ॥ १० ॥

[१३१]

(ऋषिः- परुच्छेपो दैवोदासिः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- अत्यष्टिः ।)

१४६६ इन्द्राय हि द्यौरसुरो अनम्नते—न्द्राय मही पृथिवी वरीमभि—र्द्युम्नसाता वरीमभिः ।
इन्द्रं विश्वे सजोषसो देवासो दधिरे पुरः ।
इन्द्राय विश्वा सवनानि मानुषा रातानि सन्तु मानुषा ॥ १ ॥

अर्थ— [१४६४] यह (सूरः) प्रेरक इन्द्र (जातः) प्रकट होकर अपने (ओजसा) बलसे अपना (चक्रं) चक्र (प्र वृहत्) ऊपर उठाता है। वह (अरुणः) तेजस्वी इन्द्र (प्रपित्वे) पास जाकर शत्रुकी (वाचं) वाणीको (मुषायति) छीन लेता है अर्थात् समीप जानेपर शत्रु चुप हो जाते हैं। वह (ईशानः) सबका स्वामी उनकी वाणीको मानो (आ मुषायति) चुरा लेता है। हे (कवे) मेधावी इन्द्र ! (यत्) जब तू (उशना) उशनाकी (ऊतये) रक्षाके लिए (परा वतः) दूरसे (अजगन्) पास पहुँचता है तब (मनुषाः इव) मनुष्यके समान उसे (विश्वा) सब (सुम्नानि) सुख (तुर्वणिः) बाँटनेवाला बन। (विश्वा इव अहा) सारा ही दिन दान करनेके समान सदा (तुर्वणिः) दाता बन ॥ ९ ॥

[१४६५] हे (वृषकर्मन्) बलके कर्म करनेवाले और (पुरां) नगरोंके (दर्तः) तोडनेवाले इन्द्र ! (सः) वह तू हमारे (नव्येभिः) नये (उक्थैः) स्तोत्रोंसे प्रसन्न होकर (पायुभिः) रक्षक, (शग्मैः) सुखकारक साधनोंसे (नः) हमारी (पाहि) रक्षा कर। हे (इन्द्र) इन्द्र ! (दिवोदासेभिः) दिवोदासके पुत्रोंसे (स्तवानः) प्रशंशित होकर (अहोभिः इव) जैसे दिनोंसे (द्यौः) सूर्य, वैसे ही तू भी (वावृधीथाः) बढ ॥ १० ॥

[१३१]

[१४६६] (असुरः) शक्तिशाली असुर (द्यौः) द्यौ (इन्द्राय हि) इन्द्रके सामने (अनम्नत) नम्र हो गई। (मही) बडी (पृथिवी) पृथिवी अपने (वरीमभिः) श्रेष्ठ वस्तुओंके साथ (इन्द्राय) इन्द्रके सामने नम्र हो गई (द्युम्नसाता) अन्नकी प्राप्तिके युद्धमें (वरीमभिः) उत्तम साधनोंसे युक्त शत्रु भी नम्र हो गए। (विश्वे) सारे (सजोषसः) समान उत्साहवाले (देवासः) देवोंने (इन्द्रं) इन्द्रको सबसे (पुरः) आगे (दधिरे) स्थापित किया। (विश्वा) सारे (मानुषा) मनुष्यसम्बन्धी (सवनानि) सवन और (मानुषा) मनुष्योंके दिये हुए (रातानि) दान (इन्द्राय) इन्द्रके लिये (सन्तु) हों ॥ १ ॥

भावार्थ— इन्द्र सब युद्धोंमें केवल श्रेष्ठ मनुष्यकी ही रक्षा करता है, तथा ऐसे मननशील श्रेष्ठ मनुष्योंको तंग करनेवाले दुष्ट पुरुषोंको दण्ड देकर अपने शासनमें रखता है। पर जब हिंसक बहुत ज्यादा उपद्रव करने लग जाते हैं, तब यह इन्द्र उन्हें उसी प्रकार भस्म कर देता है, जिस प्रकार अग्नि पदार्थोंको भस्म कर देती है। राजा भी सदा श्रेष्ठ मनुष्योंकी ही सहायता करे, तथा इसका ध्यान रखे कि उपद्रवकारी हिंसक ऐसे मननशील ज्ञानियोंको कभी तंग न करें। यदि तंग करें तो उन्हें दण्ड देकर नियंत्रणमें रखे, या फिर विनष्ट कर दे ॥ ८ ॥

यह शूरवीर तथा अन्य वीरोंको प्रेरणा देनेवाला इन्द्र शस्त्र हाथमें लेकर शत्रुओंके पास जाता है, तब वह शत्रुओंको चुप करा देता है। उसके भयसे शत्रु-दलमें सन्नाटा छा जाता है। तब वह इन्द्र अपने चाहनेवाले भक्तोंकी रक्षा करता है और ऋषि और मनुष्योंमें सुखोंका विभाग करता है ॥ ९ ॥

बलके कर्म करनेवाला यह इन्द्र स्तुतिसे प्रसन्न होकर सुखदायी पदार्थ देता है और दिन जैसे सूर्यका प्रकाश बढाते हैं वैसे स्तोत्र इन्द्रकी शक्ति बढाते हैं ॥ १० ॥

१४६७ विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते समानमेकं वृषमण्यवः पृथक् स्वः सनिष्यवः पृथक् ।
तं त्वा नावं न पर्षणिं शूषस्य धुरि धीमहि ।
इन्द्रं न यज्ञैश्चितयन्त आयवः स्तोमेभिरिन्द्रमायवः ॥ २ ॥

१४६८ वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृजः ।
यद् गव्यन्ता द्वा जना स्वर्यन्ता समूहसि ।
आविष्करिक्रद् वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ॥ ३ ॥

१४६९ विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः सासहानो अवातिरः ।
शासस्तमिन्द्र मर्त्य—मयज्युं शवसस्पते ।
महीममुष्णाः पृथिवीमिमा अपो मन्दसान इमा अपः ॥ ४ ॥

अर्थ— [१४६७] तुझे (वृष-मन्यवः) दानी माननेवाले (पृथक्) पृथक् पृथक् (विश्वषु हि) सारे ही (सवनेषु) यज्ञोंमें (त्वा) तुझ (एकं) एक (समानं) समानरूपसे पूज्य इन्द्रको अन्नादि (तुञ्जते) देते हैं। (स्वः) स्वर्गकी (सनिष्यवः) प्राप्तिके अभिलाषी (पृथक्) पृथक् पृथक तुझे देते हैं। (यज्ञैः) यज्ञोंसे तुझे (चितयन्तः) जगानेवाले हम (आयवः) मनुष्य (पर्षणिं) सागरसे पार करानेवाली (नावं न) नावके समान (तं) उस (त्वा) तुझ (इन्द्रं न) इन्द्रको ही (शूषस्य) बलके (धुरि) धुरेमें (धीमहि) स्थापित करते हैं। हम (आयवः) स्तोता लोग (स्तोमेभिः) स्तोत्रोंसे तुझ (इन्द्रं) इन्द्रको धारण करते हैं ॥ २ ॥

[१४६८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत्) जब तू (वृषणं) बलयुक्त तथा (सचा-भुवं सचा-भुवं) सदा साथ रहनेवाले (वज्रं) वज्रको (आविः करिक्रत्) प्रकट करते हुए (स्वः) स्वर्ग जाने और (गव्यन्ता) गाय प्राप्त करनेकी इच्छावाले (द्वा) दोनों (जना) पति-पत्नियोंको वहां (सं-ऊहसि) ले जाता है तब हे (इन्द्र) इन्द्र ! (गव्यस्य) गायोंके (व्रजस्य) समूहकी (साता) प्राप्तिके युद्धमें तुझे (निः सृजः) प्रेरित करनेवाले, स्वयं (सक्षन्तः) जानेवाले और तुझे (निः-सृजः) ले जानेवाले (अवस्यवः) रक्षाके अभिलाषी (मिथुनाः) पत्नी सहित यजमान (त्वा) तेरे निमित्त यज्ञका (वि ततस्रे) विस्तार करते हैं ॥ ३ ॥

[१४६९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत्) जब तूने शत्रुके (शारदीः) शरद्‌में निवास करने योग्य (पुरः) नगरोंको (अव अतिरः) नष्ट किया, उन्हें (सासहानः) दबाते हुए (अव अतिरः) नष्ट किया, तब (पूरवः) प्रजाओंने (ते) तेरे (अस्य) इस (वीर्यस्य) पराक्रमको (विदुः) जाना। हे (शवसः पते) बलके स्वामी (इन्द्र) इन्द्र ! तूने (तं) उस (अयज्युं) यज्ञरहित (मर्त्यं) मनुष्यको (शासः) दण्डित किया और उससे (महीं) विशाल (पृथिवीं) पृथिवी और (इमाः) इन (अपः) जलोंको (अमुष्णाः) छीना। (मन्दसानः) हर्षके साथ (इमाः) इन (अपः) जलोंको छीना ॥ ४ ॥

भावार्थ— द्यौ और पृथिवी युद्धमें इन्द्रकी सहायता करते हैं और देव इसे अपना नेता चुनकर उसे अन्न पहुँचाते हैं। सभी समान उत्साहवाले देव इस इन्द्रको आगे स्थापित करते हैं, अर्थात् इन्द्र युद्धोंमें सबसे आगे रहता है। इसीलिए इस इन्द्रकी शक्तिका कोई मुकाबला नहीं कर सकता ॥ १ ॥

इन्द्र सबका समान पूज्य है। स्तोता लोग बलके कार्योंमें उसे ही लगाते हैं। सुखकी अभिलाषा करनेवाले उस इन्द्रकी उपासना करते हैं ॥ २ ॥

पत्नी और पति मिलकर इन्द्रके लिये यज्ञ रचाते हैं। वे दोनों जन स्वर्ग जाने और गौ आदि पशु प्राप्त करनेकी अभिलाषासे इन्द्रको हर तरहसे प्रसन्न करते हैं ॥ ३ ॥

असुर जल और पृथिवीको घेर कर अपने अधीन रखते हैं। इन्द्र उनका घेरा तोडकर पृथिवी और जलको मुक्त करता है यह इन्द्रका बडा पराक्रम है। यह यज्ञ न करनेवालेको दण्ड देता है ॥ ४ ॥

१४७० आदित् ते अस्य वीर्यस्य चर्किरन् मदेषु वृषन्नुशिजो यदाविथ सखीयतो यदाविथ।
चकर्थ कारमेभ्यः पृतनासु प्रवन्तवे।
ते अन्यामन्यां नद्यं सनिष्णत श्रवस्यन्तः सनिष्णत ॥ ५ ॥

१४७१ उतो नो अस्या उषसो जुषेत ह्यर्कस्य बोधि हविषो हवीमभिः स्वर्षाता हवीमभिः।
यदिन्द्र हन्तवे मृधो वृषा वज्रिञ्चिकेतसि।
आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म श्रुधि नवीयसः ॥ ६ ॥

१४७२ त्वं तमिन्द्र वावृधानो अस्मयु—रमित्रयन्तं तुविजात मर्त्यं वज्रेण शूर मर्त्यम्।
जहि यो नो अघायति शृणुष्व सुश्रवस्तमः।
रिष्टं न यामन्नप भूतु दुर्मति—र्विश्वाप भूतु दुर्मतिः ॥ ७ ॥

अर्थ— [१४७०] हे (वृषन्) बलवान इन्द्र ! (यत्) जिस कारण (मदेषु) उत्साहके समय तूने (उशिजः) भक्तोंकी (आविथ) रक्षा की, (यत्) जिस कारण (सखीयतः) मित्रता चाहनेवालोंकी (आविथ) रक्षा की (आत् इत्) इस कारण (ते) तेरे (अस्य) इस (वीर्यस्य) पराक्रमको उन्होंने (चर्किरन्) चारों ओर फैलाया। तूने (पृतनासु) युद्धोंमें धन (प्र वन्तवे) बाँटनेके लिये (एभ्यः) इनको प्रसन्न करनेवाला (कारं) कार्य (चकर्थ) किया। (ते) उन्होंने (अन्यां-अन्यां) एक दूसरेके (नद्यं) धनको (सनिष्णत) प्राप्त कराया, (श्रवस्यन्तः) धनकी इच्छा करते हुए (सनिष्णत) प्राप्त कराया ॥ ५ ॥

[१४७१] (उतो) और वह इन्द्र (नः) हमारे (अस्याः) इस (उषसः) उषःकालका (जुषेत हि) सेवन करे। । हे इन्द्र ! तू हमारी (हवीमभिः) पुकारों द्वारा इस (अर्कस्य) स्तुति और (हविषः) हविको (बोधि) जान, (स्वः-साता) सुख प्राप्तिके युद्धमें (हवीमभिः) स्तुतिओं द्वारा जान। हे (वज्रिन्) वज्रधारी (इन्द्र) इन्द्र ! (यत्) जिस कारण (वृषा) दाता तू (मृधः) हिंसकोंको (हन्तवे) मारनेके लिये (चिकेतसि) जागता रहता है अतः (अस्य) इस (नवीयसः) नये (वेधसः) ज्ञानी, (नवीयसः) नये ज्ञान रखनेवाले (मे) मुझ स्तोताकी (मन्म) स्तुति (आ श्रुधि) सुन ॥ ६ ॥

१ वृषा मृधः हन्तवे चिकेतासि— यह बलवान् इन्द्र हिंसकोंको मारनेके लिए हमेशा सावधान रहता है।

[१४७२] हे (तुवि-जात) बहुत प्रसिद्ध (शूर) बलवान् (इन्द्र) इन्द्र ! (यः) जो (नः) हमारे साथ (अघायाति) पाप करना चाहता है, (त्वं) तू (वावृधानः) बढते और (अस्मयुः) हमें चाहते हुए (तं) उस (अमित्र-यन्तं) अमित्रसा व्यवहार करनेवाले (मर्त्यं मर्त्यं) प्रत्येक मनुष्यको (वज्रेण) वज्रसे (जहि) मार। (सुश्रवः तमः) सुननेमें श्रेष्ठ तू हमारी पुकार (शृणुष्व) सुन। (दुः-मतिः) दुष्ट बुद्धिवाला शत्रु (रिष्टं न) टूटे हुए वस्तुके समान हमारे (यामन्) मार्गमेंसे (अप भूतु) दूर हो। (विश्वा) सारी (दुः-मतिः) दुष्ट बुद्धि (अप भूतु) दूर हो ॥ ७ ॥

१ अमित्रयन्तं मर्त्यं जहि— अमित्र या दुश्मनकासा व्यवहार करनेवाले मनुष्यको यह इन्द्र मारता है।

भावार्थ— जो इन्द्रको चाहता और उससे मित्रता जोडता है वह उसकी रक्षा करता और उसके लिये आनन्दसे लडता है। वह हमेशा अपने मित्रोंके अनुकूल ही कार्य करता है, और उन्हें पर्याप्त धन देता है ॥ ५ ॥

जब यज्ञोंमें स्तोत्र द्वारा इन्द्रको पुकारते हैं तब वह आकर स्तुति और हवि प्राप्त करता है और शत्रुओंको मारनेके लिये नवीन स्तोताओंकी पुकार भी सुनता है। यह शत्रुओंको मारनेके कार्यमें हमेशा सजग रहता है, कभी भी वह शत्रु-दलनके काममें असावधान नहीं रहता। इसी तरह राजा भी शत्रुदलनके कार्यमें सदा सावधान रहे ॥ ६ ॥

इन्द्र दुर्बुद्धि और दुष्ट विचारवालेको प्रजाके बीच नहीं रहने देता। वह अपने भक्तोंसे दुश्मनकासा व्यवहार करने-वालोंको मारता है। तथा उन्हें मार्गसे दूर करता है ॥ ७ ॥

[१३२]

(ऋषिः- परुच्छेपो दैवोदासिः। देवता- इन्द्रः, ६ (१ अर्धर्चस्य) इन्द्रापर्वतौ । छन्दः- अत्यष्टिः।)

१४७३ त्वया॑ व॒यं म॑घवन् पू॒र्व्ये॑ ध॒न इन्द्र॑त्वोताः सासह्याम पृतन्य॒तो व॑नु॒याम॑ वनुष्य॒तः ।
नेदि॑ष्ठे अ॒स्मिन्नह॒न्य॑धि वो॒चा नु सु॑न्व॒ते ।
अ॒स्मिन् य॒ज्ञे वि च॑येमा॒ भरे॑ कृ॒तं वा॑ज॒यन्तो॒ भरे॑ कृ॒तम् ॥ १ ॥

१४७४ स्व॒र्जेषे॒ भर॑ आ॒प्रस्य॒ वक्म॑न्युष॒र्बुधः॑ स्वस्मि॒न्नञ्ज॑सि क्रा॒णस्य॑ स्वस्मि॒न्नञ्ज॑सि ।
अह॒न्निन्द्रो॒ यथा॑ वि॒दे शी॒र्ष्णाशी॑र्ष्णोप॒वाच्यः॑ ।
अ॒स्म॒त्रा ते॑ स॒ध्र्य॑क् स॒न्तु रा॒तयो॑ भ॒द्रा भ॒द्रस्य॑ रा॒तयः॑ ॥ २ ॥

१४७५ तत् तु प्रयः॑ प्र॒त्नथा॑ ते शुशुक्व॒नं यस्मि॑न् य॒ज्ञे वार॒मकृ॑ण्वत॒ क्षय॑मृ॒तस्य॒ वार॑सि॒ क्षय॑म् ।
वि तद् वो॑चे॒रध॑ द्वि॒तान्तः प॑श्यन्ति र॒श्मिभिः॑ ।
स घा॑ विदे॒ अन्विन्द्रो॑ ग॒वेष॑णो ब॒न्धु॒क्षिद्भ्यो॑ ग॒वेष॑णः ॥ ३ ॥

---

[१३२]

अर्थ—[१४७३] हे (मघ-वन्) धनसम्पन्न इन्द्र ! (त्वया) तुझ (इन्द्रत्वा-ऊताः) इन्द्रसे रक्षित (वयं) हम लोग (पूर्व्ये) पहले (धने) युद्धमें ही (पृतन्यतः) युद्धकी इच्छावाले शत्रुओंको (सासह्याम) दबा दें। (वनुष्यतः) हिंसाकी इच्छावालोंको (वनुयाम) मार दें। (अस्मिन्) इस (नेदिष्ठे) समीपके ही (अहनि) दिन में तू (सुन्वते) सवनकर्ताको (अधिवोच नु) कह। हम (भरे) युद्धमें उत्तम कार्य (कृतं) करनेवाले तुझे (अस्मिन्) इस (यज्ञे) यज्ञमें (वि चयेम) चुनें। हम (वाज-यन्तः) बलवान् बनते हुए (भरे कृतं) युद्धके नेताको ग्रहण करें ॥ १ ॥

[१४७४] (स्वः-जेषे) सुखको प्राप्त करानेवाले (भरे) युद्धमें (आप्रस्य) श्रेष्ठ मनुष्यके (वक्मनि) रास्तेमें (उषः-बुधः) प्रातः जागनेवालेके (स्वस्मिन्) अपने (अञ्जसि) प्रत्यक्ष व्यवहारमें तथा (क्राणस्य) उत्तम कर्म करनेवालेके (स्वस्मिन्) अपने (अञ्जसि) नित्य कर्ममें विघ्न डालनेवाले शत्रुको (इन्द्रः) इन्द्रने (यथा विदे) ज्ञानके अनुसार (अहन्) मारा और वह (शीर्ष्णा-शीर्ष्णा) प्रत्येक शिरसे, मनुष्यसे (उप-वाच्यः) स्तुतिके योग्य हुआ। हे इन्द्र ! (ते) तेरे (रातयः) दान (अस्म-त्रा) हमारी (सध्र्यक्) ओर आनेवाले (सन्तु) हों, तुझ (भद्रस्य) मङ्गलमय स्वामीके (रातयः) दान हमारे लिये (भद्राः) मङ्गलकारी हों ॥ २ ॥

[१४७५] (यस्मिन्) जिस (यज्ञे) यज्ञमें (वारं) उत्तम (क्षयं) स्थान (अकृण्वत) बनाया गया है, वहाँ (प्रत्न-था) पूर्वके समान (ते) तेरे लिये (तत् तु) वही (शुशुक्वनं) तेजस्वी (प्रयः) अन्न प्राप्त हो। तू (ऋतस्य) सत्यका (क्षयं) स्थान (वाः) प्राप्त करानेवाला (असि) है। तू (तत्) उस स्थानका (वि वोचेः) वर्णन कर। (अध) और (रश्मिभिः) किरणोंसे (द्विता अन्तः) दोनों लोकोंके बीच सारे लोग उसे ही (पश्यन्ति) देखते हैं। (सः घ) वही (गो-एषणः) गौवें प्राप्त करानेवाला (इन्द्रः) इन्द्र सत्यका स्थान (अनुविदे) जानता है। (गो-एषणः) गायोंका ढूँढनेवाला इन्द्र (बन्धुक्षिद्भ्यः) बन्धुके साथ रहनेवालोंके लिये गाय आदि प्राप्त कराता है ॥ ३ ॥

१ ऋतस्य क्षयं वाः असि— यह इन्द्र सत्यका स्थान प्राप्त करानेवाला है।

भावार्थ— स्तोता इन्द्रके सहायसे शत्रुको पहले आक्रमणमें ही जीत लेना चाहते हैं और थोडे दिनोंमें अपनी अभीष्ट सिद्धि करना चाहते हैं ॥ १ ॥

इन्द्र प्रत्येक व्यवहारमें बाधक शत्रुको मारता और अपना दान यजमानोंकी ओर प्रेरित करता है। उसके दान सदा कल्याण करनेवाले होते हैं ॥ २ ॥

केवल इन्द्र ही उस सत्यके स्थानको जानता है और वही विद्वानोंके सामने उस सत्य स्थानका वर्णन करता है। तब ज्ञानीजन उस स्थानको देखते हैं, उसका साक्षात्कार करते हैं। अतः इन्द्रको उस सत्य स्थानका प्राप्त करानेवाला कहा है ॥ ३ ॥

१४७६ नू इत्था ते पूर्वथा च प्रवाच्यं यदङ्गिरोभ्योऽवृणोरप व्रज—मिन्द्र शिक्षन्नप व्रजम् ।
ऐभ्यः समान्या दिशा ऽस्मभ्यं जेषि योत्सि च ।
सुन्वद्भ्यो रन्धया कं चिदव्रतं हृणायन्तं चिदव्रतम् ॥ ४ ॥
१४७७ सं यज्जनान् क्रतुभिः शूर ईक्षय—द्धने हिते तरुषन्त श्रवस्यवः प्र यक्षन्त श्रवस्यवः ।
तस्मा आयुः प्रजावदिद् बाधे अर्चन्त्योजसा ।
इन्द्र ओक्यं दिधिषन्त धीतयो देवाँ अच्छा न धीतयः ॥ ५ ॥
१४७८ युवं तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा यो नः पृतन्यादप तंतमिद्धतं वज्रेण तंतमिद्धतम् ।
दूरे चत्ताय च्छन्त्सद् गहनं यदिनक्षत् ।
अस्माकं शत्रून् परि शूर विश्वतो दर्मा दर्षीष्ट विश्वतः ॥ ६ ॥

अर्थ—[१४७६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत्) जो तूने (अङ्गिरोभ्यः) अङ्गिरा लोगोंके लिये (व्रजं) गायोंके समूहको (अप अवृणोः) खुला किया, उन्हें (शिक्षन्) देते हुए (व्रजं) गायोंके निकलनेके मार्गको (अप) खोला । (एभ्यः) इन्हींके (समान्या) समान (दिशा) ढंगसे तू (अस्मभ्यं) हमारे लिये भी धनादि (आ जेषि) जीतता (योत्सि च) और लडता है । तू (कंचित्) किसी भी (अव्रतं) व्रत रहितको (सुन्वद्भ्यः) यज्ञ करनेवालेके लिए (रन्धय) नष्ट कर, (हृणायन्तं चित्) क्रोध करनेवाले (अव्रतं) पापीको वशमें कर । (नु) शीघ्र (इत्था) इसप्रकार (पूर्व-था च) पहलेके समान ही (ते) तेरा कार्य (प्र-वाच्यं) कहने योग्य, सुनाने योग्य हो ॥ ४ ॥

[१४७७] (यत्) जब (शूरः) शूर इन्द्रने अपने (क्रतु-भिः) कामोंके साथ (जनान्) भक्त मनुष्योंकी (सं) ओर (ईक्षयत्) देखा, तब उन (श्रवस्यवः) अन्नके अभिलाषी लोगोंने (धने) युद्धके (हिते) छिड जाने पर शत्रुओंको (तरुषन्त) मारा, (श्रवस्यवः) यशके अभिलाषी जनोंने उस इन्द्रकी (प्र यक्षन्त) विशेष पूजा की । उन्होंने (ओजसा) बलसे शत्रुओंको (बाधे) नष्ट करनेके लिये (तस्मै) उसको (प्रजावत्) प्रजायुक्त (एव) ही (आयुः) अन्न (अर्चन्ति) समर्पित किया । वे (धीतयः धीतयः) कर्म-कुशल मनुष्य (देवान् अच्छ न) देवोंके समान (इन्द्रे) इन्द्रमें अपना (ओक्यं) निवास (दिधिषन्त) धरते हैं, बनाते हैं ॥ ५ ॥

[१४७८] हे (पुरः-युधा) आगे होकर लडनेवाले (इन्द्रा-पर्वता) इन्द्र और पर्वत ! (यः) जो (नः) हमारे साथ (पृतन्यात्) युद्ध करे । (युवं) तुम दोनों (तं) उसे मारो । (तं-तं इत्) उन सबको ही (अप-हतं) मारो । (वज्रेण) वज्रसे (तं-तं इत्) उन सबको ही (हतं) मारो । (यः) जो शत्रुओंको (दूरे) दूर (चत्ताय) फेंकनेकी (छन्त्सत्) इच्छा करता है वह (यत्) जो (गहनं) गुप्त स्थान है उसे भी (इनक्षत्) प्राप्त कर लेता है । हे (शूर) शूर इन्द्र ! (अस्माकं) हमारे (शत्रून्) शत्रुओंको (विश्वतः) सब ओरसे (परि) दबा दे । शत्रुओंको (दर्मा) फाड देनेवाला तू उन्हें (विश्वतः) सब ओरसे (दर्षीष्ट) चीर फाड दे ॥ ६ ॥

भावार्थ—इन्द्र शत्रुओंको जीत कर अङ्गिरा लोगोंकी गायें छुडा लाता है । व्रतहीनोंको व्रती लोगोंके अधीन रखता है । उनके क्रोधको भी दूर करता है ॥ ४ ॥

इन्द्रके पराक्रमसे ही उसके भक्तोंमें बल आ जाता है । वे इन्द्रसे रक्षित उसीकी आज्ञामें रहना चाहते हैं । इन्द्रके देखने मात्रसे लोगोंमें बलका संचार होने लगता है और वे हिंसकोंको विनष्ट करने लग जाते हैं । उत्तम कर्म करनेवाले जन इन्द्रको ही अपना आश्रय स्थान बनाना चाहते हैं ॥ ५ ॥

इन्द्र वज्रसे शत्रुको मारता है । वह इस कार्यमें पर्वतको साथी बनाता है । वज्रमें कई पर्व होनेके कारण उसे पर्वत कहा जाता है । यह इन्द्रका शस्त्र है । इन्द्र और उसका वज्र ये दोनों मिलकर शत्रुओंका नाश करते हैं ॥ ६ ॥

[१३३]

(ऋषिः- परुच्छेपो दैवोदासिः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- १ त्रिष्टुप्, २-४ अनुष्टुप्, ५ गायत्री, ६ धृतिः, ७ अष्टिः ।)

१४७९ उभे पुनामि रोदसी ऋतेन द्रुहो दहामि सं महीरनिन्द्राः ।
अभिव्लग्य यत्र हता अमित्रा वैलस्थानं परि तृह्ळा अशेरन् ॥ १ ॥
१४८० अभिव्लग्या चिदद्रिवः शीर्षा यातुमतीनाम् ।
छिन्धि वटूरिणा पदा महावटूरिणा पदा ॥ २ ॥
१४८१ अवासां मघवञ्जहि शर्धो यातुमतीनाम् ।
वैलस्थानके अर्मके महावैलस्थे अर्मके ॥ ३ ॥
१४८२ यासां तिस्रः पञ्चाशतो ऽभिव्लङ्गैरपावपः ।
तत् सु ते मनायति तकत् सु ते मनायति ॥ ४ ॥

---

[१३३]

अर्थ— [१४७९] मैं (ऋतेन) यज्ञके बलसे (उभे) दोनों (रोदसी) लोकोंको (पुनामि) पवित्र करता हूँ। (अनिन्द्राः) इन्द्रके विरोधी सारे (महीः) बडे (द्रुहः) शत्रुओंको (सं दहामि) जलाता हूँ। (यत्र) जहाँ (अमित्राः) शत्रु (अभि-व्लग्य) लडते हुए (हताः) मारे गये, (तृळहाः) मरे हुए वे सब (वैल-स्थानं परि) श्मशान स्थानपर (अशेरन्) सो गये ॥ १ ॥

[१४८० । हे (अद्रि-वः) वज्रवाले इन्द्र ! तू (यातुमतीनां) हिंसावाले शत्रुओंके (शीर्षा) शिर पर (अभि-व्लग्य चित्) पहुँच कर अपने (वटूरिणा) विशाल (पदा) पाँवसे (महा-वटूरिणा) अपने अत्यधिक विशाल (पदा) पाँवसे उन्हें (छिन्धि) नष्ट कर दे ॥ २ ॥

[१४८१] हे (मघ-वन्) धनवाले इन्द्र ! तू (अर्मके) कुत्सित (वैल-स्थानके) मरे लोगोंके स्थानमें एवं (अर्मके) घृणित (महा-वैलस्थे) बडे श्मशानोंमें (आसां) इन (यातुमतीनां) हिंसा करनेवाली सेनाओंका (शर्धः) बल (अव जहि) नष्ट कर ॥ ३ ॥

[१४८२] हे इन्द्र ! (यासां) जिन शत्रुकी सेनाओंके (तिस्रः) तीन (पञ्चाशतः) पचास अर्थात् डेढसौ लोगोंको अपने (अभि-व्लङ्गैः) घेरनेवाली चालोंसे तूने (अप-अवपः) मार दिया, भक्त-वर्ग (ते) तेरे (तत्) उस कर्मकी (सु मनायति) बडी प्रशंसा करता है, (ते) तेरे (तकत्) उस कर्मकी (सु) बहुत (मनायति) प्रशंसा करता है ॥ ४ ॥

भावार्थ— इन्द्रके सभी विरोधी मारे जाते हैं। जब शत्रु अधिक मारे जाते हैं तब उनके मृत देहोंसे युद्ध-क्षेत्र श्मशान दिखाई पडता है ॥ १ ॥

इन्द्रके पांव बहुत बडे हैं अर्थात् इन्द्रमें आक्रमण करनेकी शक्ति बहुत है, अतः वह इन्द्र अपनी शक्तिसे शत्रुओंको चूर-चूर कर देता है ॥ २ ॥

युद्धमें मृतकोंका ढेर लग जाता है और वह स्थान भयानक और बहुत बुरा दिखाई देता है इन्द्र ऐसे श्मशानके समान भयानक स्थानोंमें शत्रुओंको बडी संख्यामें मारता है ॥ ३ ॥

इन्द्रने इस युद्धमें डेढ सौ असुरोंको मारा, उसका यह कर्म प्रशंसाके योग्य है। इन्द्र शत्रुओंको किस प्रकार घेरा जाए, इस विद्यामें बहुत प्रवीण है इसलिए वह शत्रुओंको आसानीसे मार देता है ॥ ४ ॥

१४८३ पिशङ्गभृष्टिमम्भृणं पिशाचिमिन्द्र सं मृण ।
सर्वं रक्षो नि बर्हय ॥ ५ ॥

१४८४ अवर्मह इन्द्र दादृहि श्रुधी नः शुशोच हि द्यौः क्षा न भीषाँ अद्रिवो घृणान्न भीषाँ अद्रिवः ।
शुष्मिन्तमो हि शुष्मिभिर्वधैरुग्रेभिरीयसे ।
अपूरुषघ्नो अप्रतीत शूर सत्वभिस्त्रिसप्तैः शूर सत्वभिः ॥ ६ ॥

१४८५ वनोति हि सुन्वन् क्षयं परीणसः सुन्वानो हि ष्मा यजत्यव द्विषो देवानामव द्विषः ।
सुन्वान इत् सिषासति सहस्रा वाज्यवृतः ।
सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रयिं ददात्याभुवम् ॥ ७ ॥

अर्थ— [१४८३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (पिशङ्गभृष्टिं) कुछ लाल रंगके शस्त्र धारण करनेवाले (अम्भृणं) महान्, विशाल शरीरधारी (पिशाचिं) दुष्टको (सं मृण) मार दे । तू (सर्वं) सारे (रक्षः) राक्षसोंको (नि बर्हय) नष्ट कर दे ॥ ५ ॥

[१४८४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू उस (महः) बडे असुरको (अवः) नीचा करके (दादृहि) नष्ट कर दे । तू (नः) हमारी पुकार (श्रुधि) सुन । हे (अद्रिवः) वज्रधारी इन्द्र ! (द्यौः) द्यौ (क्षाः न) पृथिवीके समान (भीषा) भयसे (शुशोच हि) शोक करने लगी । हे (अद्रिवः) वज्रधारी ! (घृणात् न) जैसे अग्निसे पदार्थ जलने लगते हैं, वैसे (भीषा) भयसे जलने लगी । (शुष्मिभिः) बलवान् पुरुषोंसे युक्त (शुष्मिन्तमः हि) श्रेष्ठ वीरों वाला तू (उग्रेभिः) कठोर (वधैः) शस्त्रोंसे युक्त होकर शत्रुओंके पास (ईयसे) जाता है । हे (अप्रति-इतः) पीछे न लौटनेवाले (शूर) शूर ! (अपुरुष-घ्नः) अपने वीरोंको नाशसे बचानेवाला तू (सत्व-भिः) वीरोंके साथ जाता है । हे (शूर) वीर इन्द्र ! तू (त्रि-सप्तैः) इक्कीस (सत्वभिः) वीरोंके साथ जाता है ॥ ६ ॥

[१४८५] यजमान (सुन्वन्) सवन करता हुआ (क्षयं) घर (वनोति हि) प्राप्त करता है । वह (सुन्वानः हि स्म) यज्ञ कराते हुए ही (परीणसः) सब ओर फैले हुए (द्विषः) द्वेषियोंको (अव यजति) दूर करता है । (देवानां) देवोंके (द्विषः) द्वेषियोंको (अव) दूर भगाता है । वह शत्रुके (अवृतः) घेरेमें न आनेवाला (वाजी) बलवान् इन्द्र (सुन्वानः इत्) याजकोंको ही (सहस्रा) सहस्रों धन (सिषासति) देना चाहता है, तब (इन्द्रः) इन्द्र (सुन्वानाय) सवन करनेवालेके लिये (आ भुवं) धन (ददाति) देता है । वह यजमानको (आ-भुवं) भक्तके योग्य (रयिं) धन (ददाति) देता है ॥ ७ ॥

भावार्थ— इन्द्रके शत्रु भयंकर और रंग-बिरंगे शस्त्रास्त्रवाले होते हैं । उनको वह मारता है ॥ ५ ॥

जब राक्षस और दुष्ट बहुत बढ जाते हैं और वे सर्वत्र अत्याचार करने लगते हैं, तब उनके अत्याचारोंको देखकर पृथ्वी कांपने लगती है और उसी तरह द्युलोक भी कांपने लगता है, तब इन्द्र इन अत्याचारियोंपर आक्रमण करता है और अपने शस्त्रास्त्रोंसे उन्हें मारता है ॥ ६ ॥

इन्द्रका भक्त द्वेष नहीं करता और दूसरोंके द्वेषको भी दूर हटा देता है । जो इन्द्रको सहस्रों धनतक दे सकता है वही उसका सच्चा भक्त है और उसे ही स्थिर धन प्राप्त होता है । जो इन्द्रको हवि देता है, उसे ही इन्द्र धन प्रदान करता है ॥ ७ ॥

[१३४]

(ऋषिः- परुच्छेपो दैवोदासिः । देवता- वायुः । छन्दः- अत्यष्टिः, ६ अष्टिः ।)

१४८६ आ त्वा जुवो रारहाणा अभि प्रयो वायो वहन्त्विह पूर्वपीतये सोमस्य पूर्वपीतये ।
ऊर्ध्वा ते अनु सूनृता मनस्तिष्ठतु जानती ।
नियुत्वता रथेना याहि दावने वायो मखस्य दावने ॥ १ ॥

१४८७ मन्दन्तु त्वा मन्दिनो वायविन्दवो ऽस्मत् क्राणासः सुकृता अभिद्यवो
गोभिः क्राणा अभिद्यवः ।
यद्ध क्राणा इरध्यै दक्षं सचन्त ऊतयः ।
सध्रीचीना नियुतो दावने धिय उप ब्रुवत ईं धियः ॥ २ ॥

---

[१३४]

अर्थ— [१४८६] हे (वायो) विद्वान् ! (इह सोमस्य) इस संसारमें औषधी आदि पदार्थोंको (पूर्वपीतये) अगले सज्जनोंके पीनेके समान (पूर्वपीतये) जो पीना है, उसके लिए (जुवः) वेगवान् (रारहाणाः) दौडनेवाले पवन (त्वा) तुझे (प्रयः) प्रीतिपूर्वक (अभि-आ-वहन्तु) चारों ओरसे पहुंचावें, हे (वायो) ज्ञानवान् पुरुष ! जिस (ते) आपकी (ऊर्ध्वा) उन्नतियुक्त अति उत्तम (सूनृता) प्रियवाणी (जानती) और ज्ञानवती हुई स्त्री (मनः अनुतिष्ठतु) मनके अनुकूल स्थित हो । सो आप (मखस्य) यज्ञके सम्बन्धमें (दावने) दान करनेवालेके लिए, जैसे वैसे (दावने) दान देनेके लिए (नियुत्वता) जिसमें बहुत घोडे विद्यमान हैं, उस (रथेन) रमण करने योग्य यानसे (आ याहि) आओ ॥१॥

१ रारहाणाः— अतिशय गतिवाले, चपल। (रहि गतौ)
२ प्रयः— अन्न, यज्ञ, आनन्द ।
३ सूनृता— सत्यनिष्ठ, वाणी ।

[१४८७] हे (वायो) वायो ! (त्वा) तुमको (अस्मत्) हमारे द्वारा (सुकृताः) अच्छी तरहसे तैयार किए (क्राणासः) उत्साह बढानेवाले (अभिद्यवः) देदीप्यमान तथा (गोभिः) गौके दूधसे मिलाये गए (इन्दवः) प्रसन्नताको देनेवाले ये सोमरस (मन्दन्तु) आनन्दित करें । (क्राणाः) कर्मशील पुरुषार्थी (ऊतयः) रक्षाके इच्छुक मनुष्य (दक्षं) बलको (इरध्यै) प्राप्त करनेके लिए (सचन्ते) उद्योग करते हैं । तथा (धियः) सभी बुद्धिमान् पुरुष (सध्रीचीनाः) एक साथ प्रयत्नशील तथा (नियुताः) संघटित होकर (धियः) अपनी बुद्धिके द्वारा (दावने) दानके लिए तुम्हारा ही (उपब्रुवत ईं) स्तवन करते हैं ॥ २ ॥

१ क्राणासः— क्रियाशील । " क्राणाः कुर्वाणाः " (नि. ३।५।१)
२ इरध्यै— प्राप्तिके लिए, " इर गतौ "
३ क्राणाः ऊतयः दक्षं इरध्यै सचन्ते— कर्मशील पुरुषार्थी, रक्षाके इच्छुक मनुष्य बलको प्राप्त करनेके लिए उद्योग करते हैं ।
४ धियः सध्रीचीनाः नियुतः धियः दावने उपब्रुवत— बुद्धिमान् पुरुष एक साथ प्रयत्नशील तथा संघटित होकर अपनी बुद्धिके द्वारा दानके लिए तुम्हारा ही स्तवन करते हैं ।

भावार्थ— विद्वानोंकी सलाहके अनुसार लोग औषधिरसोंका पान करके उत्तम हृष्टपुष्ट हों । वे हमेशा उत्तम और सत्यसे युक्त वाणी ही बोलें। उनकी पत्नी सदा उनके अनुकूल बर्ताव करे तथा वे ऐश्वर्यशाली होकर दान करते रहें। संसारके चार सुख इस मंत्रमें बताये हैं– [१] हृष्टपुष्ट होकर स्वस्थ रहना, [२] इन्द्रियोंसे उत्तम व्यवहार करना, [३] पत्नीकी अनुकूलता, [४] ऐश्वर्यशाली होकर दानमें तत्पर होना ॥ १ ॥

१४८८ वायुर्युङ्क्ते रोहिता वायुररुणा वायू रथे अजिरा धुरि वोळ्हवे वहिष्ठा धुरि वोळ्हवे ।
प्र बोधया पुरंधिं जार आ ससतीमिव ।
प्र चक्षय रोदसी वासयोषसः श्रवसे वासयोषसः ॥ ३ ॥

१४८९ तुभ्यमुषासः शुचयः परावति भद्रा वस्त्रा तन्वते दंसु रश्मिषु चित्रा नव्येषु रश्मिषु ।
तुभ्यं धेनुः सबर्दुघा विश्वा वसूनि दोहते ।
अजनयो मरुतो वक्षणाभ्यो दिव आ वक्षणाभ्यः ॥ ४ ॥

अर्थ— [१४८८] (वायुः) वायु (वोळहवे) भार ढोनेके लिये (वहिष्ठा) भार ढोनेमें समर्थ (आजिरा) तरुण (रोहिता अरुणा) लाल तथा अरुण वर्णवाले दो घोडोंको (रथे धुरि) अपने रथकी धुरामें (युंक्ते) जोडता है। हे वायो ! (जारः आ ससतीं पुरंधिं इव) जैसे जार पुरुष सोती हुई स्त्रीको जगाता है, उसी प्रकार तुम भी मनुष्योंको (प्रबोधय) जगाओ, तथा (रोदसी) इस द्यावा पृथिवीको (प्रचक्षय) प्रकाशित करो, तथा (श्रवसे) ऐश्वर्य प्राप्तिके लिए (उषसः वासय) उषाको प्रकाशित करो (उषसः वासय) निश्चयसे उषाको प्रकाशित करो ॥ ३ ॥

[१४८९] हे वायो ! (शुचयः) शुद्ध (उषासः) उषाएँ (तुभ्यं) तुम्हारे लिए (परावति) दूर देशोंमें (दंसु) दर्शनीय (नव्येषु) नवीन (रश्मिषु) किरणोंपर (चित्रा) अनेक प्रकारके (भद्रा) कल्याणकारी (वस्त्रा) वस्त्रोंको (तन्वते) बुनती हैं। तथा (सबर्दुघा) दूधरूपी अमृतको देनेवाली (धेनुः) गाय (तुभ्यं) तुम्हारे लिए (विश्वा) सम्पूर्ण (वसूनि) दूधरूपी धनोंको (दोहते) दुहती है, प्रदान करती है तथा (अ-जनयः) न उत्पन्न होनेवाले (मरुतः) ये वायु (वक्षणाभ्यः) नदियोंसे जल खींचकर (दिवः) अन्तरिक्षसे फिर (वक्षणाभ्यः) नदियोंको जल मिले इसलिए जलका (आ) चारों ओर वृष्टिसे फैलाव करते हैं ॥ ४ ॥

१ सबर्दुघा— अमृतको दुहनेवाली, दूध देनेवाली गौ। " सबरिति अमृतनाम, तस्य दोग्ध्री "

२ उषासः भद्रा वस्त्रा तन्वते— उषाएँ हितकारी वस्त्र बुनती हैं।

३ सबर्दुघा धेनुः विश्वा वसूनि दोहते— दूधरूपी अमृत देनेवाली गौ सब धन देती है।

४ वक्षणाभ्यः दिवः वक्षणाभ्यः आ— नदियोंसे जल आकाशमें जाता है, और आकाशसे जल फिर नदियोंमें आता है।

भावार्थ— कर्मशील और पुरुषार्थी मनुष्य अपनी रक्षाके लिए तथा बल प्राप्त करनेके लिए उद्योग करते हैं। सतत पुरुषार्थ करनेसे हर तरहकी शक्ति प्राप्त होती है और उन शक्तियोंसे मनुष्यकी रक्षा होती है। ऐसे शक्तिशाली मनुष्य प्रयत्नशील और संघटित होकर बुद्धिपूर्वक वायुका स्तवन करते हैं। वायु देव सतत पुरुषार्थ और शक्तिका प्रतीक है। वह सदा गति करता रहता है, इसीलिए वह शक्तिमान् है ॥ २ ॥

वायु अपने रथमें उत्तम घोडोंको जोडता है और गति करता हुआ मनुष्योंको जगाता है। वही द्युलोक और उषाको प्रकाशित करता है। वायुके समान मनुष्य सदा प्रयत्नशील होकर दूसरोंको भी जाग्रत करें तथा उन्हें प्रयत्नशील बनाएं ॥३॥

यह वायु सदा कर्म करता है, इसीलिए उषायें इसके लिए वस्त्र बुनती हैं अर्थात् अपनी किरणों द्वारा इस वायुमें जीवनशक्ति स्थापित करती हैं। उषःकालकी वायु जीवनशक्तिसे भरपूर होती है। इस समय गायें जो दूध दुहती हैं, वह मानों अमृत ही होता है। इन्हीं हवाओंके कारण नदियोंमें पानी ऊपर आकाशमें जाता है और बरसकर फिर नदियोंमें आता है, अर्थात् वृष्टिका कारण भी यह वायु ही है ॥ ४ ॥

१४९० तुभ्यं शुक्रासः शुचयस्तुरण्यवो मदेषूग्रा इषणन्त भुर्वण्य—पामिषन्त भुर्वणि ।
त्वां त्सारी दसमानो भगमीट्टे तक्ववीये ।
त्वं विश्वस्माद् भुवनात् पासि धर्मणा—ऽसुर्यात् पासि धर्मणा ॥ ५ ॥

१४९१ त्वं नो वायवेषामपूर्व्यः सोमानां प्रथमः पीतिमर्हसि सुतानां पीतिमर्हसि ।
उतो विहुत्मतीनां विशां ववर्जुषीणाम् ।
विश्वा इत् ते धेनवो दुह्र आशिरं घृतं दुह्रत आशिरम् ॥ ६ ॥

[१३५]

(ऋषिः- परुच्छेपो दैवोदासिः । देवता- १-३, ९ वायुः; ४-८ इन्द्रवायू । छन्द- अत्यष्टिः; ७-८ अष्टिः ।)

१४९२ स्तीर्णं बर्हिरुप नो याहि वीतये सहस्रेण नियुता नियुत्वते शतिनीभिर्नियुत्वते ।
तुभ्यं हि पूर्वपीतये देवा देवाय येमिरे ।
प्र ते सुतासो मधुमन्तो अस्थिरन् मदाय क्रत्वे अस्थिरन ॥ १ ॥

अर्थ— [१४९०] हे वायो ! (तुभ्यं) तुमको (शुक्रासः) कान्तिमान् (शुचयः) शुद्ध (तुरण्यवः) अत्यन्त त्वराशील (उग्राः) तीव्र सोमरस (भुर्वणि) ऐश्वर्यदायक (मदेषु) यज्ञादि शुभ अवसरोंमें (इषणन्तः) चाहते हैं । तथा (अपां भुर्वणि) जलोंके धारण तथा आहरण करनेके कार्यके लिये भी तुमको (इषन्त) चाहते हैं। तथा हे वायो ! (भगं) भक्ति करनेके योग्य (त्वां) तुम्हारी (त्सारी) अत्यन्त भयभीत तथा (दसमानः) निर्बल मनुष्य (तक्ववीये) कष्ट तथा आपत्तियोंके नाशके लिए (ईट्टे) स्तुति करता है । क्योंकि (त्वं) तुम ही (धर्मणा) धर्मसे (विश्वस्मात्) संपूर्ण (आसुर्यात्) आसुरी (भुवनात्) जगत्से (पासि) रक्षा करते हो ॥ ५ ॥

१ शुक्रासः शुचयः तुरण्यवः उग्रा भुर्वणि मदेषु इषणन्त— बलवान्, शुद्ध त्वरासे कार्य करनेवाले उग्रवीर भरणपोषण करनेवाले आनन्दके समय तुमको चाहते हैं ।

२ भगं त्सारी दसमानः तक्ववीये ईट्टे— भाग्यवान्की भयभीत और निर्बल मनुष्य दुःख निवारणके लिए प्रशंसा करता है ।

३ धर्मणा विश्वस्मात् असुर्यात् भुवनात् पासि— धर्मसे सब दुष्ट मनुष्योंसे तुम रक्षण करते हो ।

[१४९१] (अपूर्व्यः) अपूर्व गुणवाले वायो ! (त्वं) तुम (नः) हमारे द्वारा (सुतानां) निचोडे गए (एषां सोमानां) इन सोमके रसको (प्रथमः) सबसे पहले (पीतिं अर्हसि) पीनेके योग्य हो । जैसे (विश्वाः) समस्त (धेनवः) गाएँ (आशिरं) दूध और (घृतं) घीको (ते) तुम्हारे लिए (दुह्रते) दुहतीं हैं, उसी प्रकार तुम भी (आशिरं) दूधको (दुह्र) दुहो । (उत उ) तथा (ववर्जुषीणां) पापोंसे रहित तथा (विहुत्मतीनां) यज्ञशील (विशां) मनुष्योंकी हविको स्वीकार करो ॥ ६ ॥

[१३५]

[१४९२] हे वायो ! (नः) हमारे द्वारा (बर्हिः) दर्भासन (स्तीर्णं) बिछाया है । अतः तुम (सहस्रेण) सहस्रों (नियुता) घोडोंसे (वीतये) हविका ग्रहण करनेके लिए (उप याहि) पास आओ । (शतिनीभिः) सैंकडों (नियुत्वते तुभ्यं) घोडोंवाले तुझ (देवाय) देवके लिए (देवाः) देवोंने ये सोम (येमिरे) नियुक्त किये हैं । (क्रत्वे यज्ञमें (सुतासः निचोडे गए (मधुमन्तः) मीठे सोमरस (ते) तुम्हारी (मदाय) प्रसन्नताके लिए (अस्थिरन्) सामने रखे हुए हैं ॥ १ ॥

१ नियुत— घोडे 'नियुत' ये वायुके घोडोंके नाम हैं । (नियुतः वायोः' नि. १।१५।१०) ।

भावार्थ— बलवान्, शुद्ध पवित्र भावनाओंवाले तथा शीघ्रतासे कार्य करनेवाले जन इस वायुकी स्तुति करते हैं । जो भयभीत और निर्बल हैं, वे भी इस वायुको शरणमें जाते हैं । क्योंकि वे जानते हैं कि यह वायु दुष्टोंसे धार्मिकोंका संरक्षण करता है ॥ ५ ॥

१४९३ तुभ्यायं सोमः परिपूतो अद्रिभिः स्पार्हा वसानः परि कोशमर्षति शुक्रा वसानो अर्षति ।
तवायं भाग आयुषु सोमो देवेषु हूयते ।
वह वायो नियुतो याह्यस्मयुर्जुषाणो याह्यस्मयुः ॥ २ ॥
१४९४ आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुप याहि वीतये वायो हव्यानि वीतये ।
तवायं भाग ऋत्वियः सरश्मिः सूर्ये सचा ।
अध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वायो शुक्रा अयंसत ॥ ३ ॥
१४९५ आ वां रथो नियुत्वान् वक्षदवसेऽभि प्रयांसि सुधितानि वीतये वायो हव्यानि वीतये ।
पिबतं मध्वो अन्धसः पूर्वपेयं हि वां हितम् ।
वायवा चन्द्रेण राधसा गतमिन्द्रश्च राधसा गतम् । ॥ ४ ॥

अर्थ— [१४९३] हे (वायो) वायो ! (तुभ्यं) तुम्हारे लिए (अद्रिभिः) पहाडोंपरके पत्थरोंसे निचोडकर (परिपूतः) शुद्ध किया हुआ तथा (स्पार्हा) स्पृहणीय तेजोंको (वसानः) धारण करता हुआ (अयं सोमः) यह सोम (कोशं) पात्रमें (परि अर्षति) भरा हुआ है । ऐसा (शुक्राः वसानः) निर्मल दीप्तिवाला यह सोम (तव भागः) तुम्हारा भाग है । (आयुषु) मनुष्योंमें तुम ही (देवेषु) सब देवताओंसे प्रथम (हूयते) बुलाये जाते हो । हे वायो । तुम (नियुतः) घोडोंसे (याहि) जाओ तथा (वह) अन्योंको भी ले आओ । तथा स्वयं भी (जुषाणः) इच्छा करते हुए (अस्मयुः) हमारे पास आनेकी इच्छा करते हुए (याहि) जाओ ॥ २ ॥

[१४९४] हे (वायो) वायो ! तुम (नः अध्वरं) हमारे यज्ञमें (वीतये) हवि ग्रहण करनेके लिए तथा (हव्यानि वीतये) हविको स्वीकार करनेके लिए (शतिनीभिः सहस्रिणीभिः नियुद्भिः) सैंकडों तथा हजारों घोडियोंसे (उप आ याहि) आओ । (तव) तुम्हारे लिए (अयं भागः) यह सोमका भाग (ऋत्वियः) ऋतुके योग्य ही है । ये सोमरस (सरश्मिः) किरणोंसे तप्त होकर (सूर्ये सचा) सूर्यके समान तेजस्वी हुए हैं । हे वायो ! ये सोम रस (अध्वर्युभिः) अध्वर्यु आदि ऋत्विजोंके द्वारा (भरमाणाः) भरे गए (अयंसत) हैं तथा (शुक्राः अयंसत) ये सोमरस अत्यन्त वीर्यवान् हैं ॥ ३ ॥

[१४९५] हे (वायो) वायु ! (नियुत्वान् रथः) घोडोंसे युक्त रथ (सुधितानि प्रयांसि वीतये) उत्तम प्रकारसे तैय्यार किए गए अन्नोंको खानेके लिए तथा (हव्यानि वीतये) हवियोंको खानेके लिए तथा (अवसे) हमारी रक्षाके लिए (वां वक्षत्) तुम्हें और इन्द्रको ले आवे । तथा (वां हितं) तुम दोनोंके लिए रखे हुए (पूर्वपेयं) सबसे पहले पीने योग्य (मध्वः अन्धसः पिबतं) मीठे सोमरसको पीओ । (वायो) हे वायो ! (चन्द्रेण राधसा आ गतं) आनन्ददायक धनसे युक्त होकर आओ, (इन्द्रः च राधसा आ गतं) इन्द्र भी ऐश्वर्यसे युक्त होकर आवे ॥ ४ ॥

भावार्थ— यह वायु अत्यन्त श्रेष्ठ होनेके कारण सोमरसोंको पीनेके लिए प्रथम अधिकारी है । समस्त गौवें इसके लिए अपने दूधको देती हैं । पापोंसे रहित तथा यज्ञशील मनुष्यकी हविको ही वायु स्वीकार करता है ॥ ६ ॥

हे वायु ! तुम्हारे लिए यह यज्ञ चल रहा है, इसलिए अपने रथ पर बैठकर तुम आओ और यहां आकर तुम सोमरस पिओ ॥ १ ॥

सोमरस पत्थरोंसे कूटकर शुद्ध करके तैय्यार किया जाता है । यह रस निर्मल दीप्तिवाला और अनेक तेजोंको धारण करता है । वायु इस सोमरसका भाग सबसे प्रथम ग्रहण करता है ॥ २ ॥

हे वायो ! तुम हमारे यहां सोमरसको पीनेके लिए अनेकों घोडोंसे आओ । यह ऋतुके अनुसार सोमरस तैय्यार किया गया है । ये सोमरस सूर्यके सम्पर्कमें आनेके कारण सूर्यके समान तेजस्वी हो गया है । इसलिए यह वीर्यवान् है ॥ ३ ॥

इन्द्र और वायु दोनों हमारी रक्षा करनेके लिए आवें और हमारे पास आकर हमारे द्वारा तैय्यार किए गए सोमरसको पीवें और प्रसन्न होकर आनन्ददायक ऐश्वर्य हमें प्रदान करें ॥ ४ ॥

१४९६ आ वां धियो ववृत्युरध्वराँ उपे—ममिन्दुं मर्मृजन्त वाजिनं—माशुमत्यं न वाजिनम् ।
तेषां पिबतमस्मयू आ नो गन्तमिहोत्या ।
इन्द्रवायू सुतानामद्रिभिर्युवं मदाय वाजदा युवम् ॥ ५ ॥

१४९७ इमे वां सोमा अप्स्वा सुता इहा—ध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वायो शुक्रा अयंसत ।
एते वामभ्यसृक्षत तिरः पवित्रमाशवः ।
युवायवोऽति रोमाण्यव्यया सोमासो अत्यव्यया ॥ ६ ॥

१४९८ अति वायो ससतो याहि शश्वतो यत्र ग्रावा वदति तत्र गच्छतं गृहमिन्द्रश्च गच्छतम् ।
वि सूनृता ददृशे रीयते घृत—मा पूर्णया नियुता याथो अध्वर—मिन्द्रश्च याथो अध्वरम् ७

अर्थ— [१४९६] हे इन्द्र और वायु ! (वां धियः) तुम दोनोंकी बुद्धियां (अध्वरान् उप ववृत्युः) सदा यज्ञोंके पास रहें । (आशुमत्यं वाजिनं न) जिसप्रकार वेगवान् घोडेको साफ करते हैं, उसी प्रकार (वाजिनं इमं इन्दुं) बलदायक इस सोमरसको हम तुम्हारे लिए (मर्मृजन्त) तैय्यार करते हैं । हे (इन्द्रवायू) इन्द्र वायु ! तुम दोनों (ऊत्या) रक्षणके साधनों सहित (इह नः आगन्तं) यहां हमारे पास आओ और (तेषां पिबतं) उन सोमरसोंको पीओ । (युवं) तुम दोनों (अद्रिभिः सुतानां) पत्थरोंसे कूटकर निचोडे गए सोमरसोंको (मदाय) आनंदके लिए पीओ क्योंकि (युवं वाजदा) तुम दोनों शक्तियोंको देनेवाले हो ॥ ५ ॥

[१४९७] (अप्सु सुताः) यज्ञोंमें निचोडे गए (अध्वर्युभिः भरमाणाः) अध्वर्युओंके द्वारा ले जाए जाते हुए (इमे सोमाः) ये सोम (वां अयंसत) तुम दोनोंके पास पहुंचे । हे (वायो) वायु ! (शुक्राः अयंसत) ये तेजस्वी सोमरस तुम्हारे पास पहुंचे । (एते आशवः) ये बढनेवाले सोमरस (वां) तुम्हारे लिए (तिरः पवित्रं) तिरछे होकर बर्तनमें (अभि असृक्षत) भरे जाते हैं । (युवायवः सोमासः) तुम दोनोंकी इच्छा करनेवाले सोमरस (अव्यया रोमाणि अति) न टूटे हुए बालोंमेंसे होकर छनते हैं, और (अति अव्यया) ये सोमरस अत्यन्त रक्षक हैं ॥ ६ ॥

[१४९८] हे (वायो) वायु ! (ससतः शश्वतः अति याहि) तू सोते हुए मनुष्योंको पार कर जा, उनके पास मत ठहर । तुम दोनों (यत्र ग्रावा वदति) जहां सोम कूटनेके पत्थरोंका शब्द हो रहा है, (तत्र गच्छतं) वहां जाओ (इन्द्रः च) इन्द्र और तुम (गृहं गच्छतं) यज्ञगृहको जाओ । जहां (सूनृता ददृशे) वेदमंत्र सुनाई दे रहे हों, (घृतं आ रीयते) घी बह रहा हो, वहां (पूर्णया नियुता) पुष्ट घोडोंके द्वारा (अध्वरं याथः) यज्ञको जाओ, (इन्द्रः च अध्वरं याथः) इन्द्र और तुम दोनों यज्ञको जाओ ॥ ७ ॥

भावार्थ— इन इन्द्र और वायुकी बुद्धियां यज्ञोंको प्रेरित करें, ताकि हम इन दोनोंके लिए सोमरस तैय्यार करें । उन सोमरसोंको ये दोनों देव हमारे पास आकर पीवें ॥ ५ ॥

ये तेजस्वी सोमरस कूटपीस कर निकाले जाते हैं और छानकर उत्तम बर्तनोंमें भरे जाते हैं । इन रसोंको छाननेकी छलनी भेडके बालोंकी बनी हुई होती है । इन बालोंमें छनकर यह रस शुद्ध हो जाता है ॥ ६ ॥

जो मनुष्य सोते रहते हैं, उनके पास यह वायु नहीं जाता । अर्थात् जो सोते हैं, वे वायुसे लाभ नहीं उठा सकते । इन्द्र और वायु दोनों हमेशा ऐसी जगह ही जाते हैं, जहां सोम कूटनेके पत्थरोंकी आवाज हो रही हो, जहां वेदमंत्र बोले जा रहे हों और यज्ञ चल रहा हो । जो सवेरे उठकर यज्ञ करते हैं, वे ही वायुसे जीवनशक्ति प्राप्त करते हैं ॥ ७ ॥

१४९९ अत्राह तद् वहेथे मध्व आहुतिं यमश्वत्थमुपतिष्ठन्त जायवो ऽस्मे ते सन्तु जायवः ।
साकं गावः सुवते पच्यते यवो न ते वाय उप दस्यन्ति धेनवो नाप दस्यन्ति धेनवः ८
१५०० इमे ये ते सु वायो बाह्वोजसो ऽन्तर्नदी ते पतयन्त्युक्षणो महि व्राधन्त उक्षणः ।
धन्वञ्चिद् ये अनाशवो जीराश्चिदगिरौकसः ।
सूर्यस्येव रश्मयो दुर्नियन्तवो हस्तयोर्दुर्नियन्तवः ॥ ९ ॥

[१३६]

(ऋषिः- परुच्छेपो दैवोदासिः । देवता- १-५ मित्रावरुणौ, ६-७ लिङ्गोक्ताः । छन्दः- अत्यष्टिः; ७ त्रिष्टुप् ।)

१५०१ प्र सु ज्येष्ठं निचिराभ्यां बृहन्नमो हव्यं मतिं भरता मृळयद्भ्यां स्वादिष्ठं मृळयद्भ्याम् ।
ता सम्राजा घृतासुती यज्ञेयज्ञ उपस्तुता ।
अथैनोः क्षत्रं न कुतश्चनाधृषे देवत्वं नू चिदाधृषे ॥ १ ॥

अर्थ— [१४९९] हे इन्द्र और वायु ! (अत्र अह) यहीं पर (मध्वः तत् आहुतिं) मिठाससे भरपूर उस हवि द्रव्य सोमको (वहेथे) ले आओ, (यं) जिस (अश्वत्थं) पर्वतोंमें मिलनेवाले सोमको (जायवः उपतिष्ठन्त) जयशील लोग प्राप्त करते हैं । (अस्मे ते जायवः सन्तु) इस सोमको पानेमें वे जयशील लोग समर्थ हों । (गावः साकं सुवते) ये गायें एक साथ तुम्हारे लिए दूध देती हैं, (यवः पच्यते) तुम्हारे लिए जौ आदि अन्न पकाया जाता है, हे (वायो) वायु ! (ते धेनवः न उप दस्यन्ति) तेरी वे गायें क्षीण न हों, (धेनवः न अप दस्यन्ति) गायें चुराई न जायें ॥८॥

[१५००] हे (सु-वायो) शोभन वायो ! (ते इमे बाहु ओजसः) तुम्हारे ये बलशाली बाहुओंवाले तथा (उक्षणः) युवा घोडे (ते नदी अन्तः) उन द्यावापृथिवीके बीचमें (पतयन्ति) जाते हैं, तथा (ते) तुम्हारे (उक्षणः) बलवान् घोडे (महि व्राधन्तः) सहज ही ले जाते हैं । तथा (ये) जो (धन्वन् चित्) मरुभूमिमें भी (अ-नाशवः) नाशरहित हैं, (जीराः चित्) अत्यन्त वेगवाले है (अ-गिरा-ओकसः) वाणीसे इनके स्थानका वर्णन नहीं किया जा सकता, तथा (सूर्यस्य रश्मयः इव) सूर्यकी किरणोंके समान (दु-र्नियन्तवः) नियन्त्रित नहीं हो सकते, तथा (हस्तयोः दु-नियन्तवः) हाथोंसे भी नहीं रोके जा सकते ॥ ९ ॥

[१३६]

[१५०१] हे मनुष्यो ! (निचिराभ्यां) नित्य, (मृळयद्भ्यां) सुख देनेवाले, (स्वादिष्ठं मृळयद्भ्यां) अत्यन्त सुख देनेवाले इन मित्रावरुणोंको (ज्येष्ठं बृहत् नमः) उत्तम और श्रद्धायुक्त नमस्कार करो, हव्यं मतिं भरत) प्रशंसनीय बुद्धिसे उनकी स्तुति करो। (ता) वे दोनों मित्र और वरुण (सम्राजा) अत्यन्त तेजस्वी (घृतासुती) घृतका भक्षण करनेवाले, (यज्ञे यज्ञे उपस्तुता) प्रत्येक यज्ञमें स्तुतिके योग्य हैं । (अथ) इसलिए (एनोः क्षत्रं कुतः चन न आधृषे) इन दोनोंकी क्षात्रशक्तिको कोई भी कहींसे भी कम नहीं कर सकता, (देवत्वं नु चित् आधृषे) देवत्वको भी कम नहीं कर सकता ॥ १ ॥

भावार्थ— इस सोमको जयशील लोग ही पानेमें सफल होते हैं । यह सोम पर्वतोंमें बहुत ऊंचे स्थलोंपर प्राप्त होता है, अतः इतनी ऊंचाई पर सर्वसाधारण जन नहीं जा सकते, जो अत्यधिक साहसी और उद्योगशील ही प्राप्त कर पाते हैं । इस सोमरसमें गायका दूध मिलाया जाता है । तब देवोंको दिया जाता है ॥ ८ ॥

वायुके घोडे बहुत तेज और शक्तिशाली हैं कहीं भी इनकी गति रुकती नहीं । मरुभूमिमें भी ये उतने ही वेगसे भागते हैं । जिस प्रकार सूर्यकी किरणोंको कोई नियंत्रित नहीं कर सकता, उसी तरह वायुकी गतिको भी कोई रोक नहीं सकता । वायु सदा बहता रहता है । इसी तरह वीरोंकी गति ऐसी हो कि जिसे कोई रोक न सके ॥ ९ ॥

मित्र और वरुण ये दोनों देव अत्यन्त तेजस्वी और प्रत्येक यज्ञमें उपासना करनेके योग्य हैं । सभी श्रद्धा और भक्तिपूर्वक इन दोनोंकी स्तुति करते हैं, इसलिए इनका देवत्व और शक्ति इतनी बढ जाती है कि उसे कोई भी शत्रु कहींसे भी कम नहीं कर पाता ॥ १ ॥

१५०२ अदर्शि गातुरुरवे वरीयसी पन्था ऋतस्य समयंस्त रश्मिभि- श्चक्षुर्भगस्य रश्मिभिः ।
द्युक्षं मित्रस्य सादन- मर्यम्णो वरुणस्य च ।
अथा दधाते बृहदुक्थ्यं1 वयं उपस्तुत्यं बृहद् वयः ॥ २ ॥

१५०३ ज्योतिष्मतीमदितिं धारयत्क्षितिं स्वर्वतीमा सचते दिवेदिवे जागृवांसा दिवेदिवे ।
ज्योतिष्मत् क्षत्रमाशाते आदित्या दानुनस्पती ।
मित्रस्तयोर्वरुणो यातयज्जनो ऽर्यमा यातयज्जनः ॥ ३ ॥

१५०४ अयं मित्राय वरुणाय शंतमः सोमो भूत्ववपानेष्वाभगो देवो देवेष्वाभगः ।
तं देवासो जुषेरत विश्वे अद्य सजोषसः ।
तथा राजाना करथो यदीमह ऋतावाना यदीमहे ॥ ४ ॥

अर्थ— [१५०२] (गातुः वरीयसी) अत्यन्त गति करनेवाली उषा (उरवे) यज्ञका विस्तार करनेके लिए (अदर्शि) प्रकट हुई है। (ऋतस्य पन्थाः) सूर्यका मार्ग (रश्मिभिः सं अयंस्त) किरणोंसे युक्त हो गया है, (भगस्य रश्मिभिः) ऐश्वर्यवान् सूर्यकी किरणोंसे (चक्षुः) आंखें संयुक्त हो गई हैं। (मित्रस्य अर्यम्णः वरुणस्य च सदनं द्युक्षं) मित्र, अर्यमा और वरुणका घर तेजस्वी हो गया है, (अथ) इसीलिए वे सब देव (बृहदुक्थ्यं वयः) बहुत प्रशंसनीय अन्न और (उपस्तुत्यं बृहत् वयः) प्रशंसनीय महान् बल (दधाते) धारण करते हैं ॥ २ ॥

[१५०३] (ज्योतिष्मतीं अदितिं स्वःवतीं क्षितिं धारयत्) तेजसे युक्त, टुकडे टुकडे न करनेके योग्य तथा सुख देनेवाली भूमिको धारण करते हुए (दिवे दिवे जागृवांसा) प्रतिदिन जाग्रत रहनेवाले दोनों देव मित्र और वरुण (आ सचेते) आपसमें संयुक्त होते हैं। (दिवे दिवे ज्योतिष्मत् क्षत्रं आशाते) प्रतिदिन तेजस्वी शक्तिको प्राप्त करते हैं। (आदित्या) अदितिके पुत्र (दानुनः पती) दान देने योग्य धनोंके स्वामी (मित्रः वरुणः तयोः) मित्र और वरुण दोनों (जनः यातयत्) मनुष्योंको सन्मार्गमें प्रेरित करता है, (अर्यमा जनः यातयत्) अर्यमा भी मनुष्योंको सन्मार्गमें प्रेरित करता है ॥ ३ ॥

[१५०४] (अवपानेषु आ भगः) पीने योग्य पदार्थोंमें सर्वोत्तम तथा (देवेषु आ भगः) देवोंमें सबसे ज्यादा ऐश्वर्यसम्पन्न (अयं सोमः) यह सोम (मित्राय वरुणाय शंतमः भूत्) मित्र और वरुणके लिए अत्यन्त सुख देनेवाला हो (अद्य आज सजोषसः विश्वे देवासः) एक समान विचारवाले सभी देव (तं जुषेरत) इस सोमका सेवन करें। (राजाना) हे तेजस्वी मित्र और वरुण ! (यत् ईमहे) हम जो मांगते हैं, (तथा करथः) उन्हें पूर्ण करो, हे (ऋतावाना) सत्कर्मोंको प्रेरित करनेवाले देवो ! (यत् ईमहे) जो हम मांगते हैं, उन्हें पूरा करो ॥ ४ ॥

भावार्थ— अत्यन्त तेजीसे गमन करनेवाली उषा लोगोंको यज्ञ करनेके लिए प्रेरणा देते हुए प्रकट होती हुई दिखाई देतीहै। सूर्यका मार्ग भी किरणोंसे युक्त हो गया है अर्थात् उषाके उदय होते ही सूर्यका मार्ग भी प्रकाशित हो जाता है सूर्यके उदय होते ही लोगोंको दीखने लगता है तब सभी यज्ञ करते हैं और ये सभी देव आहुतिरूपी प्रशंसनीय अन्न धारण करते हैं ॥ २ ॥

मित्रके समान हित करनेवाले तथा वरणीय श्रेष्ठ देव इस पृथ्वीको धारण करते हैं। यह पृथ्वी अत्यन्त तेजसे युक्त है, इसीलिए वह अहिंसनीय है। ये दोनों देव प्रतिदिन आकर मनुष्योंको जगाकर उन्हें उत्तम कर्मोंमें प्रेरित करते हैं ॥३॥

सोम सबसे ज्यादा ऐश्वर्यवान् और तेजस्वी है। स-उमा अर्थात् ब्रह्मज्ञानसे जो युक्त होता है, वह महा तेजस्वी और ऐश्वर्यसे युक्त होता है, वही सबके साथ मित्रवत् व्यवहार करनेके कारण वरणीय होता है, अर्थात् सभी प्रजाएं उसको चाहती हैं। वही ब्रह्मज्ञानी सभी प्रजाओंको उत्तम मार्गमें प्रेरित करता है और उत्तम सुख देता है ॥ ४ ॥

१५०५ यो मित्राय वरुणायाविधज्जनो ऽनर्वाणं तं परि पातो अंहसो दाश्वांसं मर्तमंहसः ।
तमर्यमाभि रक्षत्यृजूयन्तमनु व्रतम् ।
उक्थैर्य एनोः परिभूषति व्रतं स्तोमैराभूषति व्रतम् । ॥ ५ ॥

१५०६ नमो दिवे बृहते रोदसीभ्यां मित्राय वोचं वरुणाय मीळ्हुषे सुमृळीकाय मीळ्हुषे ।
इन्द्रमग्निमुप स्तुहि द्युक्षमर्यमणं भगम् ।
ज्योग्जीवन्तः प्रजया सचेमहि सोमस्योती सचेमहि ॥ ६ ॥

१५०७ ऊती देवानां वयमिन्द्रवन्तो मंसीमहि स्वयशसो मरुद्भिः ।
अग्निर्मित्रो वरुणः शर्म यंसन् तदश्याम मघवानो वयं च ॥ ७ ॥

अर्थ—[१५०५] (यः जनः मित्राय वरुणाय अविधत्) जो मनुष्य मित्र और वरुणकी सेवा करता है, (यः एनोः व्रतं) जो इन दोनोंके कर्मको (उक्थैः परिभूषति) अपनी प्रशंसाओंसे अलंकृत करता है, (स्तोमैः व्रतं आभूषति) अपनी वाणीसे इनके कर्मोंका वर्णन करता है, (तं अनर्वाणं) उस द्वेष न करनेवालेकी ये दोनों देव (अंहसः परिपातः) पापसे रक्षा करें । (तं दाश्वांसं ऋजूयन्तं अनुव्रतं) उस दानशील, सरल और सत्यके मार्गसे जानेवाले तथा उत्तम व्रतोंका आचरण करनेवाले मनुष्यकी (अर्यमा अंहसः अभि रक्षति) अर्यमा पापों और दुःखोंसे रक्षा करता है ॥ ५ ॥

१ अनर्वाणं अंहसः परिपातः— जो किसीसे शत्रुता नहीं रखता, ऐसे मनुष्यकी मित्रावरुण दुःखोंसे रक्षा करते हैं । (भ्रातृव्यो हि अर्वा— शत्रुका नाम अर्वा है- तै. सं. ६।३।८।४)

२ दाश्वांसं, ऋजूयन्तं अनुव्रतं अर्यमा अंहसः अभि रक्षति— दान देनेवाले, सरल और सत्य मार्गपर से चलनेवालेकी अर्यमा दुःखोंसे रक्षा करता है ।

[१५०६] (बृहते दिवे) महान् द्युलोकके लिए, (रोदसीभ्यां) द्युलोक और पृथिवीलोकके लिए (मीळ्हुषे मित्राय) सुख देनेवाले मित्रके लिए तथा (सुमृळीकाय मीळ्हुषे वरुणाय) अत्यन्त सुख और आनन्द प्रदान करनेवाले वरुणके लिए मैं (नमः वोचं) नमस्कार कहता हूँ । हे मनुष्य ! तू (इन्द्रं अग्निं, द्युक्षं अर्यमणं भगं उप-स्तुहि) इन्द्र, अग्नि, तेजस्वी अर्यमा और भगकी उपासना कर । हम (ज्योक् जीवन्तः) चिरकालतक जीवित रहकर (प्रजया सचेमहि) प्रजाओंसे युक्त हों, (सोमस्य ऊती सचेमहि) सोमकी रक्षासे युक्त हों ॥ ६ ॥

[१५०७] (स्वयशसः मरुद्भिः इन्द्रवन्तः वयं) अपने यश और शक्तियोंसे ऐश्वर्यवाले हम (देवानां ऊती मंसीमहि) देवोंकी सुरक्षाओंको प्राप्त करें । (अग्निः मित्रः वरुणः शर्म यंसन्) अग्नि, मित्र और वरुण हमें सुख देवें, (मघवानः च वयं तत् अश्याम) और ऐश्वर्यसे सम्पन्न हुए हुए हम उस सुखको प्राप्त करें ॥ ७ ॥

भावार्थ— जो मनुष्य किसीसे शत्रुता नहीं करता, किसीसे द्वेष नहीं करता, ऐसे उत्तम मनुष्यकी श्रेष्ठ पुरुष सब ओरसे रक्षा करता है । इसी तरह जो दान द्वारा निर्बलोंकी सेवा करता है, सदा सत्यमार्गपर चलता है और उत्तम व्रतोंका पालन करता है, उसकी देव सब ओरसे रक्षा करते हैं और उसे कभी भी दुःखमें नहीं डालते ॥ ५ ॥

द्युलोक, पृथ्वीलोक, मित्र और वरुण ये सभी देव अत्यन्त सुख और आनन्द प्रदान करनेवाले हैं । उन सभी देवोंकी कृपासे सभी मनुष्य दीर्घायुवाले होकर प्रजाओंसे युक्त हों और सभी तरहसे सुरक्षित हों ॥ ६ ॥

हम सब देवोंके द्वारा दिए गए सुखको प्राप्त करें, तथा अपने यश और बलोंसे युक्त होकर देवोंके द्वारा सुरक्षित हों ॥ ७ ॥

[१३७]

(ऋषिः- परुच्छेपो दैवोदासिः । देवता- मित्रावरुणौ । छन्दः- अतिशक्वरी ।)

१५०८ सुषुमा यातमद्रिभि॒र्गोश्री॑ता मत्स॒रा इ॒मे सोमा॑सो मत्स॒रा इ॒मे ।
आ रा॑जाना दिविस्पृशा ऽस्म॒त्रा ग॑न्त॒मुप॑ नः
इ॒मे वां मित्रावरुणा गवा॑शिरः सोमा॑ः शुक्रा गवा॑शिरः ॥ १ ॥

१५०९ इ॒म आ या॑त॒मिन्द॑वः सोमा॑सो॒ दध्या॑शिरः सु॒तासो॒ दध्या॑शिरः ।
उ॒त वा॑मु॒षसो॑ बु॒धि सा॒कं सूर्य॑स्य र॒श्मिभि॑ः ।
सु॒तो मि॒त्राय॒ वरु॑णाय पी॒तये॒ चारु॑र्ऋ॒ताय॑ पी॒तये॑ ॥ २ ॥

१५१० तां वां धे॒नुं न वा॑स॒रीम॒ंशुं दु॑ह॒न्त्यद्रि॑भि॒ः सोमं॑ दुह॒न्त्यद्रि॑भिः ।
अ॒स्म॒त्रा ग॑न्त॒मुप॑ नो॒ ऽर्वाञ्चा॒ सोम॑पीतये ।
अ॒यं वां मित्रावरुणा नृभि॑ः सु॒तः सोम॒ आ पी॒तये॑ सु॒तः ॥ ३ ॥

---

[१३७]

अर्थ— [१५०८] (मित्रावरुणा) हे मित्र और वरुण ! (गोश्रीताः मत्सराः इमे) गायके दूधसें मिले हुए आनन्ददायक इन सोमरसोंको हम (अद्रिभिः सुषुम) पत्थरोंसे कूटकर निचोडते हैं, (इमे सोमासः मत्सराः) ये सोम निश्चयसे आनंद देनेवाले हैं, इसलिए तुम दोनों (नः आयातं) हमारे पास आवो । (राजाना दिविस्पृशा) अत्यन्त तेजस्वी तथा द्युलोकको छूनेवाले तुम दोनों (अस्मत्रा नः उप आ गन्तं) हमारे पालनपोषण करनेवाले होकर हमारे पास आओ। हे मित्र और वरुण ! (वां) तुम्हारे लिए तैय्यार किए गए (गवाशिरः) गायके दूधमें मिले हुए तथा (गवाशिरः) पानीसें मिले हुए (इमे सोमाः) ये सोमरस (शुक्राः) तेजस्वी हैं ॥ १ ॥

[१५०९] हे मित्र और वरुण ! (इमे इन्दवः दध्याशिरः दध्याशिरः) ये तेजस्वी दही दूधसें मिले हुए (सोमासः सुतासः) सोमरस निचोडकर तैयार किए गए हैं, अतः (आ यातं) तुम दोनों आवो । (वां) तुम्हारे लिए (उषसः बुधि) उषाके उदयकी बात मालूम होते ही (सूर्यस्य रश्मिभिः साकं) सूर्यकी किरणोंके साथ ही ये रस निचोडे गए हैं । (मित्राय वरुणाय पीतये) मित्र और वरुणके पीनेके लिए (चारुः ऋताय पीतये) सत्यज्ञानको पानेके लिए (सुतः) ये सोमरस निचोडे गए हैं ॥ २ ॥

[१५१०] हे मित्रावरुण ! यज्ञ करनेवाले (वां) तुम्हारे लिए (वासरीं धेनुं न) दुधारु गाय जैसे दूध देती है, उसी प्रकार (अद्रिभिः अंशुं दुहन्ति) पत्थरोंसे कूटकर सोमको निचोडते हैं, (अद्रिभिः सोमं दुहन्ति) पत्थरोंसे कूटकर सोमको दुहते हैं । (अस्मत्रा) हमारी रक्षा करनेवाले तुम दोनों (सोम-पीतये) सोम पीनेके लिए (नः अर्वाञ्चा उप आ गन्तं) हमारी तरफ आओ । (मित्रावरुणा) हे मित्रावरुणो ! (वां) तुम दोनोंके लिए (नृभिः) यज्ञ करनेवालोंके द्वारा (अयं सुतः) यह सोमरस निचोडा गया है, (पीतये सोमः आ सुतः) तुम्हारे पीनेके लिए यह सोमरस निचोडा गया है ॥ ३ ॥

भावार्थ— सोमरस अत्यन्त तेजस्वी होनेके कारण इसके पीनेवालेको भी तेज प्रदान करते हैं । मित्र और वरुण इन दोनों देवोंका यश द्युलोकको छूता है, अर्थात् ये दोनों ही अत्यन्त यशस्वी हैं ॥ १ ॥

तेजस्वी सोम दहीमें मिलाकर पीये जाते हैं । उषःकालसें सूर्यकिरणोंके प्रकट होनेके साथ ही सोमरसोंका निचोडना शुरु हो जाता है । ऐसे समय इन रसोंको पीनेसे बुद्धि तीव्र होती है और ज्ञानकी प्राप्ति सरलतासे हो सकती है ॥ २ ॥

यह सोम पत्थरोंसे कूटा जाता है फिर उसका रस पीया जाता है । यह रस गायके दूधके समान ही बलदायक होता है । यज्ञ करनेके समय यह रस निचोडा जाता है और उस समय सब देवगण आकर इसका पान करते हैं ॥ ३ ॥

[१३८]

(ऋषिः- परुच्छेपो दैवोदासिः । देवता- पूषा । छन्दः- अत्यष्टिः ।)

१५११ प्रप्र पूष्णस्तुविजातस्य शस्यते महित्वमस्य तवसो न तन्दते स्तोत्रमस्य न तन्दते ।
अर्चामि सुम्नयन्नहमन्त्यूतिं मयोभुवम् ।
विश्वस्य यो मन आयुयुवे मखो देव आयुयुवे मखः ॥ १ ॥

१५१२ प्र हि त्वा पूषन्नजिरं न यामनि स्तोमेभिः कृण्व ऋणवो यथा मृध उष्ट्रो न पीपरो मृधः ।
हुवे यत् त्वा मयोभुवं देवं सख्याय मर्त्यः ।
अस्माकमाङ्गूषान् द्युम्निनस्कृधि वाजेषु द्युम्निनस्कृधि ॥ २ ॥

१५१३ यस्य ते पूषन् त्सख्ये विपन्यवः क्रत्वा चित् सन्तोऽवसा बुभुज्रिर इति क्रत्वा बुभुज्रिरे ।
तामनु त्वा नवीयसीं नियुतं राय ईमहे ।
अहेळमान उरुशंस सरी भव वाजेवाजे सरी भव ॥ ३ ॥

---

[१३८]

अर्थ— [१५११] (तुविजातस्य पूष्णः) बलके साथ उत्पन्न हुए हुए इस पूषा देवकी (महित्वं प्र शस्यते) महिमाकी सर्वत्र प्रशंसा होती है, (अस्य तवसः न तन्दते) इसके बलको कोई दबा नहीं सकता, (अस्य स्तोत्रं न तन्दते) इसके स्तोत्रको कोई बिगाड नहीं सकता । (सुम्नयन् अहं) सुखकी इच्छा करनेवाला मैं (यः विश्वस्य मखः मनः आयुयुवे) जो सभी यज्ञ करनेवालोंके मनको संगठित करता है, (देवः मखः आयुयुवे) जो तेजस्वी यज्ञोंको संगठित करता है, ऐसे (अन्त्यूतिं मयोभुवं) संरक्षणके साधनोंको अपने पास रखनेवाले सुखकारी पूषाकी (अर्चामि) स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

[१५१२] हे (पूषन्) पोषक देव ! (यामनि अजिरं न) जिस प्रकार युद्धमें उत्तम वेगवान् घोडेकी प्रशंसा होती है, अथवा (यथा मृधः ऋणवः) जिस प्रकार संग्रामोंकी तरफ जानेवाले उत्तम वीरोंकी प्रशंसा होती है, उसी तरह (त्वा स्तोमेभिः कृण्वे) मैं तुझे अपने स्तोत्रोंसे बढाता हूँ, तू (उष्ट्रः न) ऊंट जिस प्रकार यात्रियोंको रेगिस्तानसे पार करा देता है, उसी तरह (मृधः पीपरः) हिंसकोंसे हमें पार करा । (मर्त्यः) मरणशील मैं (सख्याय) मित्रताके लिए (मयोभुवं त्वा देवं) सुख देनेवाले तुझ देवको (हुवे) पुकारता हूँ । तू (अस्माकं आंगूषान्) हमारी वाणियोंको (द्युम्निनः कृधि) तेजस्वी बना, (वाजेषु द्युम्निनः कृधि) संग्रामोंमें हमें तेजस्वी बना ॥ २ ॥

[१५१३] हे (पूषन्) पोषक देव ! (यस्य ते) जिस तेरी (सख्ये सन्तः) मित्रतामें रहकर (विपन्यवः) बुद्धिमान् (क्रत्वा अवसा) अपने पुरुषार्थ और तुम्हारी रक्षासे (बुभुज्रिरे) सारे भोग प्राप्त करते हैं, (इति क्रत्वा बुभुज्रिरे) वे सब इस प्रकार अपने पुरुषार्थसे भोग प्राप्त करते हैं । (तां नवीयसीं अनु) उस प्रशंसनीय बुद्धिके अनुकूल रहकर हम (त्वा नियुतं रायः ईमहे) तुझसे अनन्त ऐश्वर्य मांगते हैं । हे (उरुशंस) बहुतों द्वारा प्रशंसित होनेवाले पूषा देव ! (अहेळमानः सरी भव) प्रत्येक युद्धमें हमारी तरफ आ ॥ ३ ॥

१ विपन्यवः क्रत्वा बुभुज्रिरे— बुद्धिमान जन अपने पुरुषार्थसे भोगोंको भोगते हैं ।

भावार्थ— सबके पोषण करनेवाले देवकी महिमा बहुत बडी है । पोषण करनेवालेकी शक्ति बहुत बडी होती है । इसीलिए इस देवकी शक्तिको कोई दबा नहीं सकता, अथवा इसके स्तोत्रको भी कोई बिगाड नहीं सकता । यह देव यज्ञ-कर्ताओंके मनोंको आपसमें संगठित करता है, इसीलिए वे सब एक मनवाले होकर यज्ञ करते हैं ॥ १ ॥

जिस प्रकार मनुष्य वेगवान् घोडेकी प्रशंसा करके उसका उत्साह बढाते हैं अथवा जैसे संग्राममें वीरकी प्रशंसा करके उसका उत्साह बढाया जाता है, उसी प्रकार सभी पोषण करनेवालोंका उत्साह बढाना चाहिए । इस पोषक देवके साथ मित्रता करनी चाहिए, क्योंकि यह देव अपने उपासकोंको युद्धोंसे उसी तरह तारता है, जिस तरह एक ऊंट रेगिस्तानसे । ऐसे उत्तम वक्ताकी वाणी बडी ओजस्विनी होती है ॥ २ ॥

१५१४ अस्या ऊ षु ण उप सातये भुवो ऽहेळमानो ररिवाँ अजाश्व श्रवस्यतामजाश्व ।
ओ षु त्वा ववृतीमहि स्तोमेभिर्दस्म साधुभिः ।
नहि त्वा पूषन्नतिमन्य आघृणे न ते सख्यमपह्नुवे ॥ ४ ॥

[१३९]

(ऋषिः- परुच्छेपो दैवोदासिः । देवता-१ विश्वे देवाः, २ मित्रावरुणौ, ३-५ अश्विनौ, ६ इन्द्रः, ७ अग्निः, ८ मरुतः, ९ इन्द्राग्नी, १० बृहस्पतिः, ११ विश्वे देवाः । छन्दः- अत्यष्टिः, ५ बृहती, ११ त्रिष्टुप् ।)

१५१५ अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दध आ नु तच्छर्धो दिव्यं वृणीमह इन्द्रवायू वृणीमहे ।
यद्ध क्राणा विवस्वति नाभा संदायि नव्यसी ।
अध प्र सू न उप यन्तु धीतयो देवाँ अच्छा न धीतयः ॥ १ ॥

अर्थ— [१५१४] हे (अजाश्व) पूषा देव ! (अस्याः सातये) इस ऐश्वर्यकी प्रगतिके लिए (अहेळमानः ररिवान्) क्रुद्ध न होता हुआ और दानशील होकर (नः उप भुवः) हमारे पास उपस्थित हो, (अजाश्व) हे पूषा ! (श्रवस्यतां) अन्नकी इच्छा करनेवाले हमारे पास उपस्थित हो। हे (दस्म) दर्शनीय पूषा ! हम (साधुभिः स्तोमेभिः) उत्तम स्तोत्रोंसे (त्वा सु ववृतीमहि) तेरी उत्तम सेवा करते हैं, हे (पूषन्) पोषक तथा (आघृणे) जल वर्षानेवाले देव ! (त्वा नहि अति मन्ये) तेरा मैं अपमान नहीं करता और (ते सख्यं न अपन्हुवे) तेरी मित्रताको भी नहीं तोडता ॥ ४ ॥

[१३९]

[१५१५] (पुरः) पहले (धिया अग्निं आ दधे) बुद्धिसे मैंने अग्निको धारण किया, (आ नु) इसके बाद हम अग्निसे (तत् दिव्यं शर्धः वृणीमहे) उस दिव्य शक्तिको मांगते हैं। (इन्द्रवायू वृणीमहे) इन्द्र और वायुको वरण करते हैं। (यत् ह) क्योंकि (विवस्वति नाभा) तेजयुक्त यज्ञमें मैंने (नव्यसी क्राणा संदायि) प्रशंसनीय कर्म किए हैं, इसलिए (नः धीतयः) हमारी स्तुतियां (देवान् उप सु यन्तु) देवोंके पास जाएं, (नः धीतयः) हमारी पुकार (देवान् अच्छ) देवोंके पास सीधी जाए ॥ १ ॥

भावार्थ— बुद्धिमान् और वीर पुरुष अपने पुरुषार्थ और पोषक देवकी मित्रतासे भोगोंको प्राप्त करते और भोगते हैं अर्थात् भोगोंको प्राप्त करनेके लिए वे किसी मनुष्यकी दयाके पात्र नहीं बनते। वे हमेशा अपनी उत्तम बुद्धिके अनुकूल ही रहकर धन चाहते हैं, कभी दुर्बुद्धि या कुमार्गसे धन प्राप्त करनेका प्रयत्न नहीं करते। तब ऐसे मनुष्योंपर पोषक देव कभी क्रुद्ध नहीं होता, अपितु उनकी सहायता करके उन्हें सम्पन्न और समृद्ध बनाता है ॥ ३ ॥

हे पोषक देव ! तू हम पर क्रुद्ध न हो, तथा हमें दान दे। हम भी तेरी उत्तम स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं। हम तेरा अपमान नहीं करते और तेरी मित्रताको दूर नहीं करते ॥ ४ ॥

शरीरमें अग्निको अच्छी तरह धारण करनेसे शारीरिक बल बढता है। बलके बढनेसे मनुष्य यज्ञमें उत्तम उत्तम कर्म करता है और तब उसकी प्रार्थना देवोंतक सीधी पहुंचती है अर्थात् उत्तम कर्म करनेवालेकी प्रार्थना देवगण बडे ध्यानसे सुनते हैं ॥ १ ॥

१५१६ यद्ध त्यन्मित्रावरुणावृतादध्यादुदाथे अनृतं स्वेन मन्युना दक्षस्य स्वेन मन्युना ।
युवोरित्थाधि सद्म स्वपश्याम हिरण्ययम् ।
धीभिश्चन मनसा स्वेभिरक्षभिः सोमस्य स्वेभिरक्षभिः ॥ २ ॥
१५१७ युवां स्तोमेभिर्देवयन्तो अश्विना ऽऽश्रावयन्त इव श्लोकमायवो युवां हव्याभ्या३यवः।
युवोर्विश्वा अधि श्रियः पृक्षश्च विश्ववेदसा ।
प्रुषायन्ते वां पवयो हिरण्यये रथे दस्रा हिरण्यये ॥ ३ ॥
१५१८ अचेति दस्रा व्यु१नाकमृण्वथो युञ्जते वां रथयुजो दिविष्टिष्वध्वस्मानो दिविष्टिषु ।
अधि वां स्थाम वन्धुरे रथे दस्रा हिरण्यये ।
पथेव यन्तावनुशासता रजो ऽञ्जसा शासता रजः ॥ ४ ॥

अर्थ—[१५१६] (यत् ह) क्योंकि हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण ! तुम (स्वेन मन्युना) अपने बलसे (ऋतात् अनृतं अधि आ ददाथेः) सत्यशीलके द्वारा असत्यशीलोंपर शासन करवाते हो, तथा (दक्षस्य स्वेन मन्युना) बलवान्की अपनी शक्तिसे शासन करवाते हो, (इत्था) इसलिए (युवोः हिरण्ययं) तुम दोनोंका सोने जैसा चमकीला तेज हम (धीभिः मनसा स्वेभिः अक्षभिः) अपनी बुद्धि, मन और इन्द्रियोंसे तथा (सोमस्य अक्षभिः) ज्ञानकी आंखोंसे (सद्मसु अपश्याम) घरोंमें देखते हैं ॥ २ ॥

[१५१७] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (देवयन्तः आयवः) देवोंकी भक्ति करनेवाले मनुष्य (युवां आश्रावयन्त इव) तुम दोनोंको सुनाते हुए (स्तोमेभिः श्लोकं) स्तोत्रों द्वारा तुम्हारे यशको गाते हैं । (आयवः) भक्तजन (युवां हव्या) तुम दोनोंको पुकारते हैं । हे (विश्ववेदसा) सर्वज्ञ अश्विदेवो ! (विश्वाः श्रियः पृक्षः च) सम्पूर्ण सम्पत्तियां और अन्न (युवोः) तुम दोनोंमें निहित हैं । हे (दस्रा) सुन्दर देवो ! (हिरण्यये हिरण्यये रथे) सुन्दर सोनेके रथमें (पवयः) रथकी नाभियां (वां प्रुषायन्ते) तुम दोनोंको ले जाती हैं ॥ ३ ॥

१ पवी— रथकी नाभि । " पवी रथनेमिः भवति, यद्विपुनाति भूमिम् " (निरु. ५।५)

[१५१८] हे (दस्रा) सुन्दर अश्विनौ ! तुम दोनों (नाकं ऋण्वथः) स्वर्गको जाते हो, और (रथयुजः) रथको जोडनेवाले सारथी (वां दिविष्टिषु अध्वस्मानः) द्युलोकके मार्गोंपर दौडनेवाले घोडोंको (युञ्जते) जोडते हैं, यह बात (अचेति) सब जानते हैं । (दस्रा) हे सुन्दर अश्विनौ ! हम (वां) तुम दोनोंको (हिरण्यये वन्धुरे रथे) सुनहले और अच्छी तरहसे बंधे हुए रथमें (अधि स्थाम) बिठलाते हैं । तुम दोनों (अञ्जसा) अपने बलसे (रजः शासता) लोकोंपर शासन करते हुए (रजः अनुशासता) जलोंपर नियंत्रण रखते हुए (पथा इव यन्तौ) अपने अपने मार्गोंसे जाते हो ॥ ४ ॥

भावार्थ— ये मित्रके समान स्नेह करनेवाले, तथा श्रेष्ठ देव सत्यमार्गका संरक्षण करते हैं और असत्यका नाश करते हैं, इसलिए इनकी सहायतासे सत्यके अनुयायी असत्य भाषण करनेवालों पर शासन करते हैं । ज्ञानीजन अपनी बुद्धि, मन और ज्ञानके द्वारा इन देवोंके तेजका साक्षात्कार करते हैं ॥ २ ॥

दोनों अश्विदेव सर्वज्ञ हैं । सभी सम्पत्तियां इनमें निहित हैं । सुन्दर और सुनहले रथपर चढकर ये सर्वत्र जाते हैं । इसीलिए सब इनकी स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥

अश्विनौ अन्तरिक्ष मार्गसे सबका निरीक्षण करते चलते हैं । इनके रथके घोडे बडे ही वेगवान् और रास्तेको शीघ्रतासे काटते हुए चलते हैं । ये सभी लोकोंपर शासन करते चलते हैं ॥ ४ ॥

१५१९ शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दशस्यतम् ।
मा वां रातिरुप दसत् कदा चनास्मद् रातिः कदा चन ॥ ५ ॥

१५२० वृषन्निन्द्र वृषपाणास इन्दव इमे सुता अद्रिषुतास उद्भिदस्तुभ्यं सुतास उद्भिदः ।
ते त्वा मन्दन्तु दावने महे चित्राय राधसे ।
गीर्भिर्गिर्वाहः स्तवमान आ गहि सुमृळीको न आ गहि ॥ ६ ॥

१५२१ ओ षू णो अग्ने शृणुहि त्वमीळितो देवेभ्यो ब्रवसि यज्ञियेभ्यो राजभ्यो यज्ञियेभ्यः ।
यद्ध त्यामङ्गिरोभ्यो धेनुं देवा अदत्तन ।
वि तां दुह्रे अर्यमा कर्तरी सचाँ एष तां वेद मे सचा ॥ ७ ॥

अर्थ— [१५१९] (शचीवसू) पुरुषार्थसे धन प्राप्त करनेवाले अश्विदेवो ! (शचीभिः) हमारे कर्मोंसे प्रसन्न होकर तुम (नः दिवा नक्तं दशस्यतं) हमें रातदिन धन दो। (वां रातिः) तुम्हारा यह दान (कदाचन मा उपदसत्) कभी भी क्षीण न हो, (अस्मत् रातिः कदाचन मा) हमारे दान भी कभी कम न हों ॥ ५ ॥

[१५२०] हे (वृषन्) बलवान् (इन्द्र) इन्द्र ! (इमे) ये (अद्रि-सुतासः) पत्थरसे कूटे हुए (वृष-पानासः) बलके लिये पीने योग्य (उत् भिदः) ऊपर उठे हुए (इन्दवः) सोम (सुताः) निचोडे गये हैं। ये (उत्-भिदः) ऊपर उठे हुए सोम (तुभ्यं) तेरे लिये (सुतासः) तैय्यार किए गये हैं । (ते) वे (महे) बडे (चित्राय) विचित्र (राधसे) धनके (दावने) देनेके लिये (त्वा) तुझे (मन्दन्तु) आनन्दित करें। हे (गिर्वाहः) स्तुतिके योग्य इन्द्र ! (गीः-भिः) वाणीसे (स्तवमानः) स्तुति प्राप्त करता हुआ तू (आ गहि) आ। (सु-मृडीकः) सुप्रसन्न होता हुआ तू (नः) हमारे पास (आ गहि) आ ॥ ६ ॥

[१५२१] हे (अग्ने) अग्रणी देव ! (न ईळितः त्वं ओ सु शृणुहि) हमसे प्रशंसित हुआ हुआ तू हमारी प्रार्थना सुन और (यज्ञियेभ्यः यज्ञियेभ्यः राजभ्यः देवेभ्यः) अत्यन्त पूज्य प्रकाशमान देवोंसे (ब्रवसि) तू कह, (यत् ह देवाः) कि हे देवो ! (त्यां धेनुं अंगिरोभ्यः अदत्तन) तुमने जो गाय अंगिराओंको दी थी (तां अर्यमा) उस गायको अर्यमाने (सचा कर्तरि वि दुह्रे) संघटनाके कार्यके समय दुहा । (तां एषः मे सचा वेद) उस गायको अर्यमा और मैं दोनों जानते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ— ये अश्विनौ अपने पुरुषार्थसे ही धन प्राप्त करते हैं। तथा पुरुषार्थीको ही धन देते भी हैं। अतः जो इनकी तरह पुरुषार्थ करेगा, वही इनसे धन प्राप्त कर सकेगा, आलसी कभी नहीं। इनके दान कभी कम नहीं होते, इसी प्रकार मनुष्य-के दान भी कभी क्षीण न हों। देवोंसे धन पाकर मनुष्य संचित न करे अपितु दूसरोंको दान देकर उनकी उन्नति करे ॥ ५ ॥

सोम विशेषतः इन्द्रके पीनेके निमित्त बनाये जाते हैं। इनसे इन्द्रको आनन्द मिलता है। ये सोमरस उत्साहदायक होते हैं; इसलिए इसका पान करनेवाले सदा उन्नति करते हैं ॥ ६ ॥

प्रथम इस शरीरमें अग्निने गायों अर्थात् इन्द्रियोंको दुहा अर्थात् उनमें शक्ति स्थापित की, फिर उन गायोंके रस अर्थात् इन्द्रियशक्तिको (अर्यमा) श्रेष्ठ आत्माने दुहा, इस बातको अर्यमा और ज्ञानी दोनों जानते हैं ॥ ७ ॥

१५२२ मो षु वो॑ अ॒स्मद॒भि तानि॒ पौंस्या॒ सना॑ भूवन् द्यु॒म्नानि॒ मोत जा॑रिषु॒—र॒स्मत् पु॒रोत जा॑रिषुः।
यद् व॑श्चि॒त्रं यु॒गेयु॑गे॒ नव्यं॒ घोषा॒दम॑र्त्यम् ।
अ॒स्मासु॒ तन्म॑रुतो॒ यच्च॑ दु॒ष्टरं॒ दिधृ॒ता यच्च॑ दु॒ष्टर॑म् ॥ ८ ॥

१५२३ द॒ध्यङ् ह॑ मे ज॒नुषं॒ पूर्वो॒ अङ्गि॑राः प्रि॒यमे॑धः कण्वो॒ अत्रि॒र्मनु॑र्विदु॒—स्ते मे॒ पूर्वे॒ मनु॑र्विदुः ।
तेषां॑ दे॒वेष्वाय॑ति॒—र॒स्माकं॒ तेषु॒ नाभ॑यः ।
तेषां॑ प॒देन॒ मह्या न॑मे॒ गि॒रे—न्द्रा॒ग्नी आ न॑मे॒ गि॒रा ॥ ९ ॥

१५२४ होता॑ यक्षद् व॒निनो॑ वन्त॒ वार्यं॒ बृह॒स्पति॑र्यजति॒ वे॒न उ॒क्षभिः॑ पु॒रु॒वारे॑भिरु॒क्षभिः॑ ।
ज॒गृ॒भ्मा दू॒रआ॑दिशं॒ श्लोक॒मद्रे॒रध॒ त्मना॑ ।
अधा॑रयदर॒रिन्दा॑नि सु॒क्रतुः॒ पु॒रू सद्मा॑नि सु॒क्रतुः॑ ॥ १० ॥

अर्थ— [१५२२] हे (मरुतः) मरुत् वीरो ! (वः तानि) वे तुम्हारे (सना) प्राचीनकालसे पराक्रम करनेवाले (पौंस्या) सामर्थ्य (अस्मत्) हमसे (मा सु अभिभुवन्) कभी भी दूर न हों। (उत) उसी तरह हमारे (द्युम्नानि) यश (मा जारिषुः) कभी क्षीण न हों। (उत) और (अस्मत् पुरा-जारिषुः) हमारे नगर नष्ट न हों। (वः यत्) तुम्हारा जो (चित्रं नव्यं अमर्त्यं) आश्चर्यकारक, प्रशंसनीय और अमर ऐसे (घोषात् तत्) गोशालासे लेकर मनुष्यतक जो धन हैं, वे सब (युगे युगे) प्रत्येक युगमें (अस्मासु) हमारे अन्दर स्थिर हों। (यत् च दुस्तरं, यत् च दुस्तरं) जो धन कठिनतासे मिलने योग्य और अजिक्य है वे भी तुम हमें (दिधृत) दो ॥ ८ ॥

[१५२३] (दध्यङ्) दध्यङ् (पूर्वः अंगिराः) सनातनकालसे अंगरसकी विद्या जाननेवाले (प्रियमेधः) मेधा जिनको प्रिय है, ऐसे (कण्वः) ज्ञानी (अत्रिः) तीनों दुःखोंसे रहित (मनुः) मननशील ऐसे ज्ञानी (मे जनुषं विदुः) मेरे जन्मको जानते हैं, (ते मनुः) वे मननशील ज्ञानी (मे पूर्वे विदुः) मेरे पूर्वजोंको जानते हैं। (तेषां देवेषु आयाति) उन ज्ञानियोंका देवोंके साथ सम्बन्ध रहता है। (तेषु अस्माकं नाभयः) उन देवोंमें हमारी शक्ति है। (तेषां पदेन) उन देवोंके कदमोंपर चलकर मैं (गिरा) वाणीसे (महि आ नमे) उनको नमस्कार करता हूँ (गिरा इन्द्राग्नी आ नमे) वाणीसे मैं इन्द्र और अग्निकी स्तुति करता हूँ ॥ ९ ॥

१ प्रियमेधः— मेधा जिसको प्रिय है " प्रिया अस्य मेधा " (निरु. ३।१७)

२ अत्रिः— आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक इन तीनों दुःखोंसे रहित " अत्रिः न त्रयः " (निरु. ३।१७)

[१५२४] (होता यक्षत्) यज्ञ करनेवाला यज्ञ करे, तथा (वनिनः वार्यं वन्त) अभिलाषी जन अपनी अभिलाषाओंको प्राप्त करें। (वेनः बृहस्पतिः) हितकी कामना करता हुआ वाणीका स्वामी ज्ञानी (उक्षभिः पुरुवारेभिः उक्षभिः यजति) बलयुक्त और अनेकोंके द्वारा चाहने योग्य सोमके द्वारा यज्ञ करता है। हम (दूर आदिशं) दूरकी दिशासे आती हुई (अद्रेः श्लोकं) सोम फूटनेके पत्थरकी आवाज (त्मना जगृभ्म) स्वयं सुनते हैं। (सुक्रतुः) उत्तम कर्म करनेवाला यह यज्ञीय मनुष्य (अररिन्दानि अधारयत्) जलोंको धारण करता है। (सुक्रतुः सद्मानि) श्रद्धायुक्त मनसे यज्ञ करनेवाला मनुष्य अनेक घरोंको धारण करता है ॥ १० ॥

भावार्थ— वीर सदा पराक्रम करें। उसी तरह पराक्रम करनेका सामर्थ्य हमें मिले। उसके कारण हमारे यश बढें। हमारे नगर समृद्ध हों। वीरोंका सामर्थ्य हमेशा प्रकट हो। हमें ऐसे धन प्राप्त हों कि जिन्हें शत्रु भी कभी जीत न सकें॥८॥

तीनों तरहके दुःखोंसे रहित अत्यन्त मननशील ज्ञानी मनुष्योंके सभी जन्मोंको जानते हैं वे देवोंके अत्यन्त निकट रहते हैं और साधारण मनुष्य देवोंसे ही अपनी शक्ति प्राप्त करते हैं, इसलिए देव ही उनके केन्द्र होते हैं ॥ ९ ॥

यज्ञ करनेवाला मनुष्य अनेक तरहकी कामनाओंको प्राप्त करता है। वह सदा जल तथा अन्नादिसे भरपूर रहता है और अनेक घरोंको धारण करता है अर्थात् सदा धन और ऐश्वर्यसे सम्पन्न रहता है ॥ १० ॥

१५२५ ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ ।
अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ॥ ११ ॥

[१४०]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- अग्निः । छन्दः- जगती, १० त्रिष्टुब्वा, १ः त्रिष्टुप् ।)

१५२६ वेदिषदे प्रियधामाय सुद्युते धासिमिव प्र भरा योनिमग्नये ।
वस्त्रेणेव वासया मन्मना शुचिं ज्योतीरथं शुक्रवर्णं तमोहनम् ॥ १ ॥

१५२७ अभि द्विजन्मा त्रिवृदन्नमृज्यते संवत्सरे वावृधे जग्धमी पुनः ।
अन्यस्यासा जिह्वया जेन्यो वृषा न्य१न्येन वनिनो मृष्ट वारणः ॥ २ ॥

१५२८ कृष्णप्रुतौ वेविजे अस्य सक्षिता उभा तरेते अभि मातरा शिशुम् ।
प्राचाजिह्वं ध्वसयन्तं तृषुच्युतमा साच्यं कुपयं वर्धनं पितुः ॥ ३ ॥

अर्थ—[१५२५] हे (देवासः) देवो ! (दिवि महिना) द्युलोकमें अपनी शक्तिसे (ये एकादश स्थ) जो तुम ग्यारह हो (पृथिव्यां अधि एकादश स्थ) पृथ्वीमें ग्यारह हो, (अप्सुक्षितः एकादश स्थ) अन्तरिक्षमें ग्यारह हो, (देवासः) हे देवो ! (ते) वे सब तुम (इमं यज्ञं जुषध्वं) इस यज्ञका सेवन करो ॥ ११ ॥

[१४०]

[१५२६] हे अध्वर्यो ! (प्रियधामाय वेदिषदे सुद्युते अग्नये) प्रिय स्थानवाले, उत्तम वेदीपर बैठनेवाले, प्रकाशमान् अग्निके लिए (धासिं इव योनिं प्रभर) अन्नके समान ही स्थानको विशेषरूपसे तैयार कर। और (शुचिं ज्योतीरथं शुक्रवर्णं तमोहनं) पवित्र रथके समान ज्योतिर्मय, दीप्तिमान् और अंधकारके विनाशक अग्निको (मन्मना) स्तोत्रोंसे (वस्त्रेण इव वासय) किसी वस्त्रसे ढकनेके समान ढक दो ॥ १ ॥

[१५२७] (द्विजन्मा त्रिवृत् अन्नं अभि ऋज्यते) दो काष्ठोंके मन्थन द्वारा उत्पन्न अग्नि तीन तरहके अन्नोंको प्राप्त करता है। किन्तु (ई जग्धं संवत्सरे पुनः वावृधे) अग्निके द्वारा भक्षण किया गया अन्न वर्षमें ही फिर बढ जाता है। (वृषा आसा जिह्वया अन्यस्य जेन्यः) बलवान् अग्नि (जाठराग्नि) मुख और जिह्वाकी सहायतासे अन्नके द्वारा बढता है, तथा (अन्येन वारणः वनिनः निमृष्टः) दूसरे प्रकारके रूपसे (दावाग्नि) सबको दूर करके वन वृक्षोंको जला देता है ॥ २ ॥

१ त्रिवृत् अन्नं— आज्य, पुरोडाश और सोम (सायण) सत्व, रज और तम।

[१५२८] (अस्य कृष्णप्रुतौ सक्षितौ) इस अग्निकी काली और एक साथ रहनेवाली (उभा मातरौ) दोनों अरणीरूप मातायें (वेविजे) मन्थनसे कम्पित होती हैं। इसके पश्चात् वे (प्राचाजिह्वं, ध्वसयन्तं तृषुच्युतं) उत्तम गतिशील ज्वालाओंरूपी जिह्वावाले, अन्धकारके नाशक, शीघ्र उत्पन्न होनेवाले, (साच्यं, कुपयं पितुः वर्धनं) सहवास करने योग्य, बहुत प्रयत्नसे रक्षा करने योग्य, पालन करनेवालोंके लिए समृद्धि देनेवाले (शिशुं अभितरेते) शिशु अग्निको उत्पन्न करती हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक इन तीनों लोकोंमें ग्यारह-ग्यारह देव रहते हैं, इसप्रकार इन तीनों लोकोंमें कुल तैंतीस देव रहते हैं। ये सब देव अपनी शक्तिसे ही इन स्थानोंमें रहते हैं अर्थात् उनके रहनेके लिए उन्हें किसी दूसरेके शक्तिकी आवश्यकता नहीं रहती। इसी तरह मनुष्यको चाहिए कि वह अपने ही सामर्थ्यसे स्थिर रहे। दूसरेकी शक्तिके आधारपर प्राप्त की गई स्थिरता ज्यादा समय तक टिकती नहीं ॥ ११ ॥

हर मनुष्यको चाहिए कि वह अन्धकारके विनाशक, तेजस्वी अग्निकी स्तुतियोंसे उपासना करे ॥ १ ॥

अग्निके द्वारा खाया जानेवाला अन्न हर वर्ष फिर बढ जाता है। उसी अन्नको यह अग्नि जाठराग्निके रूपमें खाता है और दावाग्नि रूपमें जंगलोंका नाश करता है ॥ २ ॥

अरणियोंके मन्थनसे अग्नि प्रकट होती है, फिर वह अन्धकारको दूर करती है और अपने पालन करनेवाले याजकोंको बढाती है ॥ ३ ॥

Regd No. G. 71

सस्ता संस्करण]

[आज ही ग्राहक बनिए

सम्पूर्ण महाभारत

(१८ जिल्दोंमें)

(संस्कृत श्लोक और हिन्दी अनुवाद सहित)

साइज- डवल क्राऊन आठ पेजी, बडा टाइप] [उत्कृष्ट छपाई व कागज, कुल पृ. सं. १२२१६

प्रधान सम्पादक

म. म. डॉ. पं. श्री. दा. सातवलेकर

सटीक एवं सचित्र महाभारतका यह नवीन संस्करण बहुत शीघ्र प्रकाशित होनेवाला है, जो १८ भागोंमें सम्पूर्ण होगा।

(१) महाभारतका पूरा सेट (१८ भाग) १००) रु. में मिलेगा। इस कीमत पर पुस्तक विक्रेताओं तथा अन्य शिक्षण संस्थाओंको १५ % कमीशन दिया जायगा। डाकव्यय, पेकिंग और रेलभाडा सब ग्राहकको देना होगा।

(२) जो व्यक्तिशः महाभारतका पूरा सेट खरीदना चाहेंगे, उन्हें इस पूरे सेटकी कीमत १००) पर १० % कमीशन दिया जाएगा। डाकव्यय, पेकिंग खर्च और रेलभाडा ग्राहकके जिम्मे रहेगा।

(३) जो व्यक्ति महाभारतके पूरे सेटका अग्रिम मूल्य (Advance) भेजेंगे, उन्हें इस पूरे सेटकी कीमत १००) पर १५ % कमीशन दिया जायगा।

(४) अग्रिम धन (Advance) भेजनेकी सुविधा पं. सातवलेकरजीके १०१ वें जन्मदिन अर्थात् १९ सितम्बर १९६७ तक ही रहेगी।

अतः आज ही अग्रिम धन भेजकर महाभारतके भागोंके ग्राहक बनकर अल्प-मूल्यमें ही इस ग्रंथरत्नका संग्रह करें।

विशेष विवरणके लिए लिखें।

व्यवस्थापक--

" महाभारत प्रकाशन-विभाग "

पोस्ट- स्वाध्याय-मण्डल, पारडी

जि. वलसाड [गुजरात]

मुद्रक और प्रकाशक-- व. श्री. सातवलेकर, भारत-मुद्रणालय, पो. 'स्वाध्याय-मंडल (पारडी)' पारडी [वलसाड]